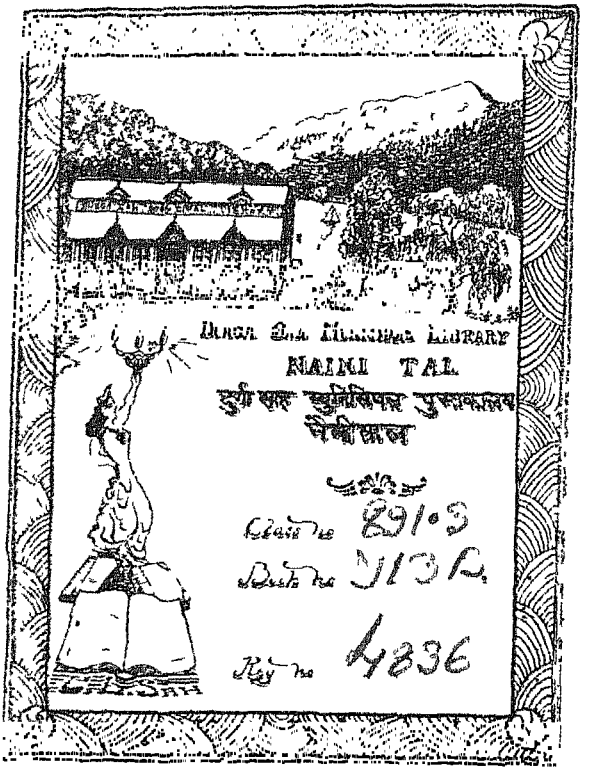

NAINI TAL
Class no 891.3
Book no J13A
Reg no 4836

बसन्ती बुआ जी

उपन्यासकार
यज्ञदत्त शर्मा

१९६०
साहित्य प्रकाशन
मालीवाड़ा, दिल्ली।

मूल्य : ५.००

सन् : १९६०

प्रकाशक : साहित्य प्रकाशन, मालीवाड़ा, दिल्ली।

मुद्रक : कामनी प्रिंटर्ज, बल्लीमारान, दिल्ली।

बसंती बुआ जी

: १ :

बाँके बिहारी एक नव युवक लेखक है। दिल्ली विश्व-विद्यालय में एम० ए० फाइनल में पढ़ रहा है। वह कविताएँ लिखता है बड़ी मधुर, और सुनाने में लिखने से भी अधिक मधुर। खूब तन्मय होकर सुनाता है। उन पर सिनेमा के गीतों की छाप रहती है।

वह कहानियाँ भी लिखता है और आजकल एक उपन्यास लिख रहा है। जितना उपन्यास वह लिखता है, मुझे सुना जाता है।

आज प्रातःकाल मैं कुछ लिखने बैठा तो क्या देखता हूँ कि बाँके बिहारी अपने उपन्यास के पन्ने उठाये चला आ रहा है। उसे देखकर मैंने अपना कलम और लिखने का पेड उठा कर एक ओर रख दिये और उसका उपन्यास सुनने के लिए तय्यार हो गया।

बाँके बिहारी की मुख-मुद्रा बतला रही थी कि आज वह बहुत प्रसन्न था। उसकी आँखें, नाक, होठ, गाल और पूरा चेहरा मुस्करा रहा था, किसी अत्यधिक प्रसन्नता से खिल रहा था। वह छूटते ही बोला, "शर्मा जी ! बड़ी ही कठिनाई से आज प्रेमिका के गले में प्रेम-पाश डाल पाया हूँ। इस उपन्यास में मेरा ऐसी नायिका से पाला पड़ गया कि जो प्रेम के चक्कर में आना ही स्वीकार नहीं करती थी। मैं कितना ही घेर-घोंट कर उसे लाता था और वह बचकर साफ निकल भागती थी।

मैं समझने लगा था कि वह सेक्स-विहीन नारी है। उसके पास वह हृदय ही नहीं, जो फड़कता है और जिसमें मर्म बिंधता है, जो

खिलता और मुरझाता है, जो झूमता और इठलाता है, जिसके संकेत पर मन-मयूर नृत्य करता है और यौवन मुस्कराता है, जिसमें यौवन की मादकता आकर भर जाती है और जो उतावला हो उठता है प्रेमी के बाहु-पाश में आबद्ध होने के लिए। मैं समझने लगा था कि यह मादकता उसके जीवन में कभी नहीं आयेगी।

परन्तु आज अचानक ही एक घटना ऐसी घटी कि मादकता का छलछलाता हुआ पात्र लिये मेरे उपन्यास की नायिका तरंगित सेक्स के उभार में इठलाती हुई रंगमंच पर उतर आई। मेरा इतने दिन का परिश्रम सफल हो गया शर्मा जी! अब मुझे विश्वास है कि मेरी यह रचना बहुत रोचक और कलात्मक हो गई।

वास्तव में बात यह है शर्मा जी! कि सेक्स का जीवन में बहुत ही महत्त्वपूर्ण स्थान है। मैं तो यह मानने लगा हूँ कि प्रेम बिना सेक्स के उभर ही नहीं सकता, उसमें वह आकर्षण और रंगीनी आ ही नहीं सकती जो पाठक को आत्म-विभोर कर सके और लेखक की रचना को 'हिट' बना सके। बिना सेक्स के रचना में वे उतार-चढ़ाव नहीं आ सकते जिनकी पगडंडियों पर चलता हुआ पाठक एक नये संसार की कल्पना कर सके।"

बाँके बिहारी की बात सुनकर मेरे होठों पर मुस्कराहट नाँच उठी। मैं उसके चेहरे पर दृष्टि पसारता हुआ बोला, "चलो यह तो अति उत्तम हुआ कि तुम्हारा उपन्यास रोचक और कलात्मक बन गया, परन्तु यह 'हिट' क्या बला है जो तुम्हारी रचना बन गई?"

मेरी बात सुनकर बाँके बिहारी खिलखिला कर हँस पड़ा। वह बोला, "इसी लिए तो मैंने आपसे कितनी ही बार अनुरोध किया है कि आप सिनेमा अवश्य देखा करें। मैं सच कहता हूँ शर्मा जी! कि यदि आप सिनेमा नहीं देखेंगे तो आज की प्रगतिशील दुनियाँ से बहुत पीछे रह जायेंगे। दुनियाँ बड़ी तीव्र गति से आगे बढ़ रही है।

यह 'हिट' शब्द सिनेमा की ही देन है। मैं समझता हूँ कि साहित्य के क्षेत्र में भी इसका प्रयोग होना नितान्त आवश्यक है। 'हिट' वह खेल होता है जिसके टिकट ब्लेक में बिकते हैं। यानी इतनी भीड़ हो जाती है कि सिनेमा-घरों की टिकट बिकने वाली खिड़कियों पर टिकट मिलना ही कठिन हो जाता है। यह खेल की लोक-प्रियता ही तो है जो 'हिट' पिक्चर को प्राप्त होती है। मेरा दृढ़ विश्वास है कि साहित्यिक रचनाओं को भी यही लोक-प्रियता प्राप्त होनी चाहिए और यह केवल 'हिट' रचनाओं को ही प्राप्त हो सकती है।"

बाँके बिहारी मेरे चेहरे पर बड़ी ही भेदपूर्ण दृष्टि से देख रहा था और सोच रहा था कि उसकी बात का मुझ पर गम्भीर प्रभाव होगा, परन्तु हुआ यह सब कुछ भी नहीं। मैं मुस्करा उठा तनिक और बाँके बिहारी की सूरत देखकर कुछ देर तक सोचता रहा कि इन नवयुवकों पर सिनेमा के गन्दे खेलों का कितना कु-प्रभाव पड़ने लगा है। यह प्रभाव बढ़ कर साहित्य के क्षेत्र में भी पदार्पण करना चाहता है। मुझे लगा कि यह एक अनर्थ होने जा रहा है। यह देश के लिए महान् हानिकारक सिद्ध होगा और भावी भारत की संतति के जीवन में एक ऐसे विष के समान प्रविष्ट होगा कि जिससे उसका जीवन ही नष्ट हो जायगा।

मैं बाँके बिहारी की बात सुनकर जब कुछ बोला नहीं तो वही बोला, "आप बहुत ही नीरस व्यक्ति हैं शर्मा जी ! आपको साहित्य के क्षेत्र में पदार्पण नहीं करना चाहिए था। मैं कई बार आज़मा कर देख चुका हूँ कि जब कभी मैं आपको साहित्य के बहुत सरस अंश सुनाता हूँ तो आप गम्भीर हो उठते हैं। न जाने क्या-क्या विचारने लगते हैं। मुझे ऐसा लगता है कि जैसे वे रोचक अंश आपको पसंद नहीं आते और आप उनके विषय में यही सोचते हैं कि उन्हें रचना से काट डालना चाहिए।"

मैं मुस्करा कर बोला, "तुम्हारा विचार ठीक है बाँके बिहारी ! और मैं तुम्हारे दृष्टिकोण के अनुसार इस मायने में नितान्त नीरस व्यक्ति हूँ। मैं सेक्स को प्रेम नहीं मानता और जो लोग यह समझते हैं कि सेक्स ही वह मधुमक्खियों का छत्ता है जिसमें से साहित्य का रस चूता है, तो मेरा उनसे भी विरोध है।"

"फिर सेक्स क्या है आपकी दृष्टि में ?" बाँके बिहारी ने प्रश्न किया।

मैंने सरलता पूर्वक उत्तर दिया, "सेक्स एक आवश्यकता है जीवन की । परन्तु जीवन की एक मात्र यही आवश्यकता नहीं है। इससे भी महत्त्वपूर्ण अन्य बहुत सी आवश्यकताएँ हैं। रोटी उससे पहली आवश्यकता है, कपड़ा उससे पहली आवश्यकता है, मकान उससे पहली आवश्यकता है, स्वास्थ्य उससे पहली आवश्यकता है, सम्पन्नता उससे पहली आवश्यकता है, शिक्षा उससे पहली आवश्यकता है । इन सभी का स्थान मैं सेक्स से पहले मानता हूँ। ये सब उपलब्ध हों तो सेक्स में भी आनन्द आता है। वरना अकेला सेक्स इन सब के अभाव में विडम्बना मात्र ही है।

और प्रेम ! यह इन सब से पृथक वस्तु है। प्रेम को मैं कर्त्तव्य का सहोदर मानता हूँ।"

मेरी बात सुनकर बाँके बिहारी मुस्करा कर बोला, "मैंने प्रेम की बात कही तो आपने उसका पल्ला कर्त्तव्य से बाँध दिया । यानी कर्त्तव्य के बिना प्रेम हो ही नहीं सकता। प्रेमी और प्रेमिका का प्रेम, जिसका उदय मैंने सेक्स से माना, उसे आप कोई महत्त्व नहीं देते, वह निरर्थक हो गया आपकी दृष्टि में ?"

मैं मुस्करा कर बोला, "देता क्यों नहीं बाँके बिहारी ! परन्तु तुम सेक्स-सम्बन्ध को प्रेम से मिलाकर क्यों चलना चाहते हो ? यदि प्रेम सेक्स-सम्बन्ध स्थापित करने के लिए ही है तो यह निम्न श्रेणी की वस्तु

है। यदि प्रेम के साथ-साथ सेक्स-सम्बन्ध भी है तो यह संसार की साधारण स्थिति की वस्तु है, जो आम लोगों में न्यूनाधिक रूप में पाया जाता है और जहाँ प्रेम इन आवश्यकता के सम्बन्धों से ऊपर उठकर आता है वहाँ प्रेम का निखरा हुआ रूप प्रस्फुटित होता है। मैं प्रेम उसी को मानता हूँ जिसमें निजी आवश्यकता या स्वार्थ निहित न हो।"

ये बातें चल ही रही थीं कि तभी पोस्टमेन आ गया और उसने डाक का पुलन्दा लाकर मेरे हाथ में दे-दिया।

मैं डाक लेकर उसमें अपनी पत्नी के पत्र की खोज करने लगा, जिसकी मैं प्रतीक्षा में था। उन्हें अपने नाना के यहाँ गये हुए लगभग एक सप्ताह हो गया था और उनका कोई पत्र नहीं आया था।

मेरी पत्नी का पत्र डाक में था। मैंने पूरी डाक मेज़ पर रख दी और उसे खोल कर पढ़ना प्रारम्भ कर दिया।

पत्र पढ़ते-पढ़ते मेरी आँखों में आँसू आ गये। मेरा मन बहुत ही उदास हो गया। मैं काँपते हाथों में उस पत्र को सँभाले हुए था।

मेरी ऐसी दशा देखकर बाँके बिहारी भी घबरा सा गया। उसने उत्सुकतापूर्ण स्वर में पूछा, "भाभी जी का पत्र है क्या ?"

मैंने कहा, "हाँ।"

"क्या लिखा है ?" उसने दूसरा प्रश्न किया।

मैं पत्र हाथ में लिये-ही-लिये कुर्सी के तकिये से कमर लगा कर बैठ गया। मेरा दिल भारी हो उठा था और आँखों में जल छलछला आया था। मेरा कंठ भारी हो गया था। मैंने धीरे-धीरे कहा, "कुछ ऐसी ही बात लिखी है इसमें। मुझे अभी गाँव जाना होगा।"

"क्यों ? क्या लिखा है भाभी जी ने ?" उसने फिर उत्सुकता पूर्वक पूछा।

"प्रेम की देवी के अंतिम दर्शन करने के लिए।" मैंने कहा।

बाँके बिहारी कुछ समझ न सका मेरे इन संक्षिप्त शब्दों को। वह

और भी घबरा उठा। उसने कहा, "क्या कहा आपने ? मैं समझा नहीं कुछ भी।"

मैं बोला, "हमारी एक बुआजी हैं गाँव में। तुम्हारी भाभी अपने नाना के यहाँ गई हुई हैं। उनका बचपन का पालन-पोषण उसी गाँव में हुआ था। इसी लिए उनका जाना-आना भी अभी तक उस गाँव में बना हुआ है। वहीं पर पड़ौस में उनकी एक बुआजी बसंती देवी हैं। उन्होंने बचपन में तुम्हारी भाभी को बहुत खिलाया था और इसी लिए तुम्हारी भाभी का भी उनके प्रति बड़ा आदर-भाव है। बुआ जी उन्हें बहुत स्नेह करती हैं और वह भी उनको अपनी माता के तुल्य समझती हैं।

मुझे याद है कि जब मैं प्रथम बार उस गाँव में गया था तो पास-पड़ौस की स्त्रियाँ जब मुझे देखने आई थीं तो सबसे आगे वही थीं। उनके उस दिन के प्यार-भरे बोल आज भी मेरे कानों में गूँज रहे हैं।

तब से आज तक जब-जब भी मेरी उनसे भेंट हुई है तो बातें करने में मेरी आत्मा को बहुत सुख मिला है। उनका सारा जीवन, यों बहुत सरल है, परन्तु बड़ा रोचक और महत्त्वपूर्ण है। न उसमें कहीं सेक्स की कुण्ठाएँ हैं और न मनोविज्ञान की ग्रन्थियाँ। सीधी-सच्ची कहानी है, एक कर्त्तव्य-परायण नारी की, परन्तु कहानी नहीं है वह बाँके बिहारी! साहित्य के सरसतम रस का मानसरोवर है, प्रेम का लहराता हुआ सागर है।

तुम्हारी भाभी ने लिखा है :

'बुआ जी की दशा बहुत खराब है। मालूम देता है उनका अंतिम समय निकट आ गया है। बचने की कोई आशा प्रतीत नहीं होती। बड़ी दुर्बल हो गई हैं।

आपको बहुत याद करती हैं। कहती हैं कि लाला आ जाता तो एक बार देख लेती उसे। उनकी हार्दिक इच्छा आपको देखने की है।

पत्र देखते ही चले आओ। आप कह भी रहे थे कि आप उनके जीवन की प्रारम्भिक घटनाओं को जानने के बहुत इच्छुक हैं।

यदि इस समय न आये तो फिर उन घटनाओं को मैं भी नहीं बतला सकूंगी आपको।

आपकी अनुचरी
राजबाला

तुम सेक्स को प्रेम का मूलाधार मानते हो। केवल तुम ही नहीं, बहुत से प्रौढ़ लेखकों की भी यही धारणा है, परन्तु मैं कर्त्तव्य को प्रेम का मूलाधार मानता हूँ। प्रेम की एकमात्र कसौटी कर्त्तव्य और त्याग हैं।

प्रेम कल्पना की वस्तु नहीं है बाँके बिहारी! यह जीवन का कठोरतम सत्य है। मेरे साथ चलो यदि तुम भी प्रेम की देवी के दर्शन करना चाहते हो। बुआ जी के जीवन की कहानी तुम अपने कानों से सुनोगे तो मुझे विश्वास है कि तुम्हारे विचारों में भी परिवर्तन होगा। तुम्हारी नवांकुरित साहित्यिक प्रेरणा को दिशा मिलेगी।"

मेरी बात सुनकर बाँके बिहारी के मन में बुआ जी की कहानी उनके मुँह से सुनने की उत्कंठा पैदा हुई। वह तुरन्त मेरे साथ चलने को उद्यत हो गया, और बोला, "मैं चलने के लिए तय्यार हूँ शर्मा जी! आप तय्यार हों, तब तक मैं अपने घर पर सूचना दे आऊँ।"

मैंने कहा, "शीघ्रता करना आने में। मुझे तय्यार होने में अधिक समय नहीं लगेगा।"

"बस गया और आया। अधिक-से-अधिक दस मिनट लगेंगे मुझे लौटने में।" बाँके बिहारी बोला।

वह चला गया। मैंने कपड़े पहनने प्रारम्भ कर दिये।

बाँके बिहारी को सचमुच लौटने में अधिक समय नहीं लगा। वह दस मिनट में ही लौट आया और हम दोनों मोटर-स्टैंड के लिए रवाना हो गये।

मोटर हमें जाते ही मिल गई। दिल्ली मोटर-स्टेंड से हर बीस-बीस मिनट पश्चात् मेरठ के लिए मोटरें चलती हैं। हम टिकट लेकर मोटर में बैठ गये।

मोटर ठीक एक घंटे में मोदीनगर पहुँच गई।

हम लोग यहाँ मोटर से उतर पड़े और एक रिक्शा किराये पर ले-ली। रिक्शा गाँव की ओर जाने वाली सड़क पर चल दी।

बाँके बिहारी ने पूछा, "गाँव कितनी दूर है यहाँ से ?"

मैंने कहा, "लगभग पाँच मील दूर है यहाँ से। ठीक एक घंटा लगेगा वहाँ तक पहुँचने में। अब यह मार्ग बहुत सुगम हो गया है। ठीक गाँव तक पक्की सड़क बन गई है। तुम जैसे शहरी लोग भी आसानी से जा-आ सकते हैं। परन्तु जब मेरी शादी हुई थी तो यह रास्ता बड़ा खराब था। विशेष रूप से बरसात में इस रास्ते पर जाना बड़ा कठिन था। केवल बैल-ताँगे का रास्ता था और वह भी बर्सात में रुक जाता था।"

"वह क्यों ?" बाँके बिहारी ने पूछा।

"वह इस लिए कि कच्चा रास्ता तगड़ी-तगड़ी पानी से भर जाता था और उसमें दलदल हो जाती थी। उसके अन्दर से होकर ताँगा नहीं जा सकता था। यदि जाता तो फँस जाता दलदल में।" मैंने कहा।

"तो फिर उन दिनों में यदि किसी को इधर आना होता था तो वह कैसे आता था ?" बाँके बिहारी ने पूछा।

"उसे पैदल आना होता था। पैदल चलने की लोग-बाग खेतों के डौलों पर से होकर राह बना लेते थे, परन्तु फिर भी बहुत सी जगहों पर उन्हें पानी में घुसना पड़ता था।" मैंने कहा।

"पानी में घुसना पड़ता था ?" आश्चर्य के साथ बाँके बिहारी ने पूछा।

मैंने कहा, "हाँ ! ऐसी जगहों पर राहगीर पैरों से जूतियाँ निकाल कर अपनी लठियों के ठोक पर टाँग लेते थे, धोती ऊपर को चढ़ा लेते थे और तब पानी में घुसते थे। तुम जैसे बूट-पेंट वाले बाबू उन दिनों इस मार्ग से नहीं जा सकते थे।"

बाँके बिहारी ने पूछा, "क्या ऐसे बरसाती मौसम में आप भी कभी आये थे इस गाँव में ?"

मैं मुस्करा कर बोला, "एक बार आया था। तुम्हारी भाभी जी की बीमारी का पत्र मिला तो मुझे बरसात में ही आना पड़ा। अपनी उस यात्रा की आज भी मुझे जब स्मृति हो आती है तो मैं सोचने लगता हूँ कि मैं कैसे आ सका। उस वर्ष बहुत वर्षा हुई थी। दो-तीन मील तक मार्ग जल-मग्न हो गया था। कहीं बाट सुझाई नहीं देती थी।

जब मैं गाँव में पहुँचा तो तुम्हारी भाभी के नाना जी को बड़ा आश्चार्य हुआ।

यह मोदीनगर नहीं था उस समय, यह बेगमाबाद था। यह जो मोदीनगर के पास एक गाँव बसा देखा था तुमने, केवल यही था उस समय और जो यह इतना लम्बा बाज़ार और इतनी मिलें जो तुमने देखीं, इनमें केवल एक गन्ना-मिल ही थी यहाँ, और कुछ नहीं था। यह सब तो गत महायुद्ध के बाद की पैदावार हैं।

यहाँ से चलकर जब मैं दो मील पहुँचा तो क्या देखता हूँ कि सामने मीलों तक पानी-ही-पानी था। खेतों के डौले और पैदल चलने का मार्ग सब पानी की सतह के नीचे विलुप्त हो चुके थे।

एक बार तो उसे देख कर मेरा हृदय भयभीत हो उठा, क्योंकि यह रास्ता मेरे लिए भी नया ही था। उससे पहले मैं कभी इतने पानी में घुसा नहीं था। यूँ तैरना मैं जानता हूँ और कई-कई मील तैर सकता हूँ पानी में, परन्तु यहाँ तैरने का प्रश्न नहीं था। यहाँ समस्या थी दलदल की और फिसल कर मुँह के बल गिर पड़ने की। जहाँ एक

बार दलदल में फँसे, कि बस फँसे। फिर उसमें से निकलना सरल नहीं होता। यह अथाह जल में पड़ने वाले भँवर से भी भयानक स्थिति होती है।

एक बार मन में आया कि वापस ही लौट चलूँ और मैं चल भी दिया वापस, परन्तु पैर रुक गये और दिल बैठने लगा मेरा। तुम्हारी भाभी जी की बीमारी का पत्र पड़ा था मेरी जेब में। उसने वापस नहीं लौटने दिया मुझे।

मैंने फिर अपने अन्दर साहस बटोरा, जूते उतारे और पानी में घुस गया। धीरे-धीरे पैर से खेत के भेंढ़े को टटोलता हुआ आगे बढ़ने लगा।

ज्यों-ज्यों मैं आगे बढ़ता था तो पानी त्यों-त्यों अधिक गहरा होता जाता था। मैं खेत के डौले पर बहुत जमा-जमा कर पैर रख रहा था। पानी टखने, पिंडली, घुटने, साँतल और फिर तगड़ी तक आ गया। मैं बढ़ता ही गया साहस के साथ। पूरा एक मील लम्बा मार्ग मैंने पानी का तै किया। अंत में पानी समाप्त हुआ और मैंने सूखी भूमि पर पैर रखा। मैंने परमात्मा को धन्यवाद दिया कि उसने मुझे सकुशल पार लगा दिया।

परन्तु अब यह सोचने लगा कि गाँव में इस वेश से मैं कैसे प्रवेश करूँगा। मैंने अपने थैले से दूसरी धोती निकाली और उसे बाँध कर पानी में भीगी और मिट्टी में सनी धोती को थैले में रखी और तब आगे बढ़ा।

वह यात्रा सचमुच ही बड़ी भयानक थी।"

"भयानक तो थी ही। यदि कहीं दल-दल में फँस जाते तो कोई सहारा देने वाला भी न मिलता। अकेले असहाय से खड़े-के-खड़े रह जाते।" बाँके बिहारी बोला।

मैं घर पहुँचा तो सब लोग मुझे देखकर आश्चार्य-चकित रह गये। नाना जी बोले, "तुम्हें ऐसी बरसात में नहीं आना चाहिए था

लाला ! भगवान् ने दया ही की कि तुम सही सलामती से आ गये। कल गाँव के कई जानवर उस दल-दल में फँस गये और निकल ही नहीं सके बेचारे। एक राहगीर की भी सात दिन हुए यहीं पर मृत्यु हो गई।"

यह बात मैंने समाप्त की तो रिक्शा वाले ने रिक्शा रोक दी और बोला, "बाबू जी ! गाँव आ गया।"

मैं पुराना किस्सा सुनाने में इतना तन्मय हो गया था कि यह मालूम ही न हुआ कि कब गाँव आया।

हम दोनों रिक्शा से उतर पड़े और पैदल-पैदल ही गाँव की ओर चल दिये। गाँव रिक्शा-स्टैंड से लगा हुआ ही था, परन्तु फिर भी जिस स्थान पर हमें पहुँचना था वह यहाँ से लगभग तीन फर्लांग की दूरी पर था।

बाँके बिहारी का गाँव में आने का यह प्रथम अवसर था। यह दुनियाँ उसके लिए नई थी। चाँदनी चौक के बाजार में घूमते हुए देहातियों को उसने देखा था। चिकने-चुपड़े शहरियों की उपहासपूर्ण दृष्टियाँ उनके चहरों पर पड़ती भी उसने देखी थीं, परन्तु जहाँ बहुत से देहातियों के बीच में कोई शहरी, सूटेड-बूटेड व्यक्ति, पहुँच जाता है वहाँ उस पर उनकी नज़रें कैसी उपहासपूर्ण हो उठती हैं, इसका अनुभव उसने नहीं किया था।

मैं गाँव में जब कभी भी जाता हूँ तो साधारण कुर्त्ता-धोती पहन कर ही जाता हूँ, सूट पहन कर नहीं।

अपने ऊपर पड़ने वाली नज़रों को पहचानकर बाँके बिहारी बोला, "शर्मा जी ! शहर के सभ्य लोगों के बीच इने-गिने देहाती लोग पहुँचकर जैसे विचित्र लगने लगते हैं वैसी ही दशा मैं देख रहा हूँ कि यहाँ गाँव के अनेकों लोगों के बीच से गुज़रते हुए मेरी हो रही है।"

बाँके बिहारी की इस बात ने मेरे ध्यान की शृंखला को खंडित कर

दिया। मेरे मस्तिष्क में इस समय बसंती बुआजी की दशा भरी हुई थी और मैं उन्हीं के विषय में सोचता हुआ आगे बढ़ रहा था।

मैं बाँके बिहारी की ओर देखकर बोला, "यह ठीक है जो तुमने अनुभव किया बाँके बिहारी ! परन्तु तुमने शहर के लोगों के साथ जो 'सभ्य' शब्द का प्रयोग किया और गाँव के लोगों को केवल 'देहाती' शब्द से सम्बोधित किया, यह ठीक नहीं है। सभ्यता का सम्बन्ध वस्त्रों और चन्द अक्षरों के पढ़ लेने या चालाकी से भरे मस्तिष्क से ही नहीं है। सभ्यता का सम्बन्ध आचरण से है, व्यवहार से है।

ये वस्त्र, जो तुम पहने हो, आज से बीस वर्ष पूर्व गाँवों में विचित्र प्रतीत होते थे, परन्तु आजकल नहीं। अब तो इन लोगों के काफ़ी बच्चे पढ़-लिख गये हैं और इन वस्त्रों का प्रयोग करने लगे हैं। मैं स्वयं भी तो इन्हीं लोगों का बच्चा हूँ। तो क्या तुम मुझे भी असभ्य कहोगे ?"

मेरी यह बात सुनकर बाँके बिहारी ने हृदय से अनुभव किया कि उसने वास्तव में ग़लती से शहर के लोगों के पहले 'सभ्य' शब्द का प्रयोग किया और गाँव के लोगों को 'देहाती' कहकर सम्बोधित किया। बाँके बिहारी हठी लड़का नहीं है। अपनी भूल को तुरन्त स्वीकार करा लेता है। वह बोला, "मुझसे वास्तव में भूल हुई शर्मा जी ! यह मेरी आँखों का कसूर है। मेरी आँखों को यह वेष-भूषा भली नहीं लगी, इसीलिए मेरे हृदय और मस्तिष्क पर भी इसका भला प्रभाव न पड़ सका। इसीलिए मैं इन शब्दों का प्रयोग कर गया।"

मैं मुस्करा कर बोला, "सभ्यता का सम्बन्ध न वस्त्रों से है और न सुन्दर और असुन्दर सूरतों से। उसका सम्बन्ध व्यवहार से है। अभी तुम आये हो गाँव में। इन लोगों का व्यवहार देखना।

वैसे यह व्यवहार अब वैसा नहीं रह गया है जैसा आज से बीस-तीस वर्ष पूर्व था। शहरों की स्वार्थप्रिय भावना का प्रवेश गाँवों में भी काफ़ी मात्रा में हो गया है। चालाकी और खुदगर्ज़ी की यहाँ भी कमी

नहीं रह गई है और जिस प्रकार शहर में छड़े-छींदे गाँव वालों को देखकर मूर्ख समझा जाता है उसी प्रकार गाँव में भी 'बाबू जी' को ये लोग मूर्ख समझते हैं। 'बाबू जी' शब्द का अर्थ यहाँ शहरों की भाँति आदर के साथ प्रयुक्त नहीं होता, वरन् व्यंग्य के साथ लिया जाता है। 'बाबू जी' का अर्थ इनकी भाषा से अकर्मण्य व्यक्ति से है।"

बाँके बिहारी मुस्करा कर बोला, "यहाँ आकर मेरे ज्ञान में वृद्धि हुई है शर्मा जी ! मुझे ऐसी बातें मालूम हुई हैं जो शहर में रहकर मैं जीवन भर न जान पाता।" कृतज्ञतापूर्ण स्वर में उसने कहा।

: २ :

बातें करते-करते ही हम लोग घर पहुँच गये। मेरी श्रीमती जी के साथ मेरे बच्चे भी आजकल यहीं पर आये हुए थे। गर्मी की छुट्टियाँ थीं विद्यालयों की। मई का महीना था और गर्मी बहुत थी।

मेरी बड़ी लड़की शारदा ने आगे बढ़कर नमस्ते करते हुए कपड़ों का थैला मेरे हाथ से ले-लिया। बाँके बिहारी को भी "चाचा जी नमस्ते" कह कर प्रणाम किया।

बाँके बिहारी स्नेह से बोला, "अरे ! शारदा बिटिया भी यहीं है। नमस्ते बेटी ? जरा पानी तो ले आओ एक गिलास। बड़ी प्यास लगी है।"

शारदा ने तुरन्त ताज़ा पानी का गिलास बाँके बिहारी को लाकर दिया और फिर हम लोग दालान में पड़ी खाट पर बैठ गये।

मैंने शारदा से पूछा, "तुम्हारी माता जी कहाँ हैं ?"

"बसंती नानी जी के घर गई हैं।" शारदा बोली।

"कैसी तबियत है उनकी अब ?" मैंने पूछा।

"तबियत अच्छी नहीं है पिता जी !" शारदा ने कहा।

"क्या उठ-बैठ भी नहीं सकतीं ?" मैंने पूछा ।

"बिलकुल नहीं पिता जी !" शारदा बोली और मैंने देखा कि उसकी आँखों में आँसू झलक आये थे ।

शारदा बचपन में तीन वर्ष तक अपनी नानी जी के पास यहीं इसी गाँव में रही थी और उन दिनों बसंती बुआ जी का स्नेह इसे प्राप्त हुआ था। इस लिए मेरे सब बच्चों से अधिक शारदा के हृदय में बसंती बुआ जी के लिए ममता थी । उसका हृदय भारी हो उठा ।

"और माजी कहाँ गई हैं ?" मैंने पूछा । मैं अपनी सास को 'माजी' ही कहकर पुकारता हूँ । वह इसी गाँव में अपने पिता के घर पर रहती हैं । यों रहती मेरे विवाह के पूर्व से भी अधिकांश यहीं थीं परन्तु मेरे विवाह के उपरान्त वह अपनी ससुराल नहीं गईं ।

मेरे ससुर ने मेरे विवाह के पश्चात् अपना दूसरा विवाह कर लिया था और मेरी सास से अपना सम्बन्ध विच्छेद सा कर लिया । मुझे उनका यह व्यवहार अच्छा नहीं लगा और इसीलिए मेरा सम्बन्ध भी उन से टूट सा ही गया ।

तब से मैं इसी गाँव को अपनी ससुराल मानता रहा हूँ और यहीं जाता-आता रहा हूँ ।

शारदा बोली ! "माजी भी बसंती नानी के ही घर गई हैं । बहुत देर की गई हुई हैं, आती ही होंगी । आप बैठिये, मैं तब तक उन्हें जाकर सूचना दे आती हूँ ।"

मैंने कहा, "नहीं, तुम यहीं रहो घर पर, मैं स्वयँ हो आता हूँ वहाँ ।"

इतना कहकर मैं खड़ा हो गया और बाँके बिहारी को साथ लेकर बसंती बुआ जी के घर की ओर चल दिया ।

उनके घर के निकट पहुँचा तो देखा कि रिसालसिंह कहीं को भागा जा रहा था। मैंने उसे रोक कर, उससे कुछ पूछना उचित नहीं समझा ।

शायद हकीम जी के पास जा रहा था, मेरी धर्मपत्नी के नाना जी के पास, क्योंकि वही इस गाँव के सब से छोटे या सब से बड़े हकीम, डाक्टर या वैद्य थे।

मैंने बाँके बिहारी से कहा, "देख रहे हो यह व्यक्ति, जो दौड़ा जा रहा है, यह बसंती बुआ जी के छोटे भाई रिसालसिंह हैं। कितनी तन्मयता के साथ दौड़े जा रहे हैं। अपनी जीजी की बीमारी में इन्होंने सब काम-काज त्याग दिये होंगे। और यह दूसरा व्यक्ति जो घर के द्वार पर खड़ा है, यह रिसालसिंह का बड़ा भाई है।

हम लोग अब बसंती जीजी के घर के द्वार पर पहुँच गये थे। मान-सिंह द्वार पर ही खड़े-खड़े रो रहे थे। उनके नेत्रों से अश्रु-धारा बह रही थी। उन्हें पसीना आ रहा था।

मुझे देखकर वह रोते हुए मुझसे लिपट गये और मैंने भी उन्हें स्नेह से सँभाल लिया।

मैं उन्हें धैर्य बँधाते हुए बोला, "रोओ नहीं मामा जी! यह सेवा का समय है। अब कैसी तबियत है बुआ जी की?"

मामा जी मेरे प्रश्न का उत्तर न दे सके। उनके हृदय में अथाह पीड़ा थी और उनका सिर चकरा रहा था। उनका मन उद्विग्न हो उठा था और शरीर अथाह पीड़ा से टूट रहा था। आज हफ्तों उन्हें ठीक से सोये हो गये थे, ठीक से खाये हो गये थे।

वह "बोले, भय्या! आज जिधर भी देखता हूँ अँधेरा-ही-अँधेरा नज़र आता है। मैं ठीक नौ वर्ष का था जब माँ को भगवान् ने इस दुनियाँ से उठा लिया था उस समय रिसालसिंह की आयु सात वर्ष की थी।"

इतना कहकर उन्होंने गर्म श्वाँस ली और करुणा भरे नेत्र मेरे नेत्रों में डालकर बोले, "यह सच जानो तुम, हमारी माँ तब नहीं मरी थी। हमारी माँ अब मर रही है। माँ मर गई तो बसन्ती जीजी ने हम

दोनों भाग्यों को छाती से लगा लिया और हमें ऐसे पाला कि क्या कोई माँ पालेगी ?"

मैं मामा जी को अपनी कौली में भरे हुए था। मैं अपने को सम्भाल कर बोला, "मामा जी ! धीरज से काम लो। माँ-बाप किसी के हमेशा नहीं बैठे रहते और जब वे सर पर से उठते हैं तो एक बार को ऐसा मालूम देता है कि उनके मकान के ऊपर से छत उठी जा रही है। वह छत जो आँधी, वर्षा और ओलों से रक्षा करती रही थी, घोर शीतकाल में हिम और पाले से बचाती रही थी, घर की शोभा को बढ़ाती रहती थी और चोर तथा उचक्कों से घर के माल-असबाब की रक्षा करती रही थी।

ऐसी दशा में भय लगता है, आँखों के सम्मुख अन्धकार छा जाता है, आगे बढ़ने का मार्ग सुझाई नहीं देता, परन्तु धीरे-धीरे सब ठीक हो जाता है। इस समय क्योंकि वह तूफ़ान आ रहा है जो तुम्हारे घर की छत को उड़ा ले जाना चाहता है, तुम ठीक से सोच-विचार नहीं सकते, परन्तु फिर भी धैर्य से काम लो। बसन्ती बुआ जी की जितनी भी सेवा तुमसे बन सके, करो।"

बाँके बिहारी यह दृश्य देखकर द्रवित हो उठा। उसके नेत्रों की पुतलियों में वे कई पुरानी स्मृतियाँ उतर आईं जिनमें उसने देखा था कि माता मृत्यु-शय्या पर पड़ी थीं और बेटा सिनेमा देखने जा रहा था।

बाँके बिहारी की दृष्टि मामा जी पर गई और फिर कल्पना के लोक में उसने कमलकुमार को देखा। यह कमलकुमार बाँके बिहारी का बचपन का साथी था, साथ पढ़ता आया था।

उसके रंगीन जीवन ने बाँके बिहारी को बहुत प्रभावित किया था और बाँके बिहारी ने बहुत दिन पूर्व यह निश्चय किया था कि यदि वह कभी कोई उपन्यास लिखेगा तो कमल कुमार को अपने उपन्यास का नायक बनायेगा।

कमलकुमार एक स्वस्थ, सुन्दर, संगीतप्रिय और खिलाड़ी लड़का

था। धनाढ्य परिवार का होने के कारण उसे जेब-खर्च के लिए काफ़ी रुपया मिलता था। सिनेमा देखने का उसे बहुत शौक था और उसी के साथ रहकर बाँके बिहारी को भी सिनेमा में विशेष रुचि पैदा हो गई थी।

सिनेमा की रंगीन दुनियाँ का उस पर प्रभाव पड़ा था और मानव-जीवन की झाँकी उसके मस्तिष्क पर सिनेमा के पर्दे से ही उतर कर आई थी। जीवन की वास्तविकता में झाँकने का उसे अवसर ही नहीं मिला था।

आज उसे उस दिन का देखा हुआ सिनेमा याद आ रहा था, जो उसने कमल कुमार के साथ देखा था और वहाँ से लौट कर जब वह कमल कुमार के घर पहुँचा था तो उसने देखा था कि उसकी माता जी जीवन के अंतिम श्वाँस गिन रही थीं। परिवार के अन्य लोग उनकी शय्या के चारों ओर खड़े थे और कमलकुमार को देखने के लिए उसकी माता जी के नेत्र तरस रहे थे।

कमलकुमार ने अपनी माता जी के कमरे में प्रवेश किया तो उनके नेत्रों से दो मोटे-मोटे आँसू ढुलक आये और उसने देखा कि उसके पिता जी की आँखों के डोरे लाल हो गये थे उसकी सूरत देखकर।

कमलकुमार ने एक तमाशबीन की तरह अपनी माता जी के चहरे पर देखा। उनके नेत्र बन्द हो गए थे।

बाँके बिहारी के हृदय पर उस दिन कुछ ठेस लगी थी अपने मित्र की इस हृदय-हीनता को देखकर। आज मानसिंह और रिसालसिंह को अपनी जीजी बसन्ती के शोक में ऐसी गम्भीर स्थिति देखकर वह स्मृति फिर से ताजा हो उठी उसकी आँखों के सम्मुख। इस समय ये तीनों व्यक्ति एक कतार में खड़े थे, कमलकुमार, मानसिंह और रिसालसिंह। वह तीनों की मुखाकृतियों का निरीक्षण कर रहा था, उनकी दशाओं को अपने हृदय और मस्तिष्क के पटल पर चित्रित कर रहा था।

मैंने बाँके बिहारी को साथ लेकर घर में प्रवेश किया तो सामने ही माजी मिल गईं। वह घर को जा रही थीं। मुझे देखकर उनका चेहरा खिल उठा। वह बोलीं, "तुम आ गये बेटा ! तुमने बहुत अच्छा किया। बसन्ती ने आज कई बार तुम्हें याद किया। जाओ मिल लो अन्दर जाकर। राजबाला भी वहीं बैठी है।"

मैंने माजी को प्रणाम करके पूछा, "अब कैसा जी है बुआ जी का?"

माजी बोलीं, "जी क्या है बेटा ! दो-चार दिन की मेहमान है। वैसे भगवान् जाने कब तक का काया-कष्ट है ? लेकिन बेटा ! जैसी सेवा अपनी जीजी की मानसिंह और रिसालसिंह ने की है ऐसी सगा बेटा भी कोई क्या करेगा ? और दोनों की बहुएँ भी बेचारी बहुत नेक निकलीं। दोनों ने हाथों पर ले रखा है बसन्ती को।"

माजी की बात सुनकर मुझे आत्मिक शान्ति मिली। मानसिंह और रिसालसिंह की जीजी-भक्ति से मैं पूर्व-परिचित था। मुझे बीस वर्ष इस गाँव में आते-जाते हो गये थे। सन् चालीस में मेरा विवाह हुआ था और तब से मैं अनेकों बार यहाँ आया था। दोनों से घंटों-घंटों बैठकर मैंने आत्मीयता के साथ बातें की थीं और उनके हृदय की झाँकी प्राप्त की थी।

मैं और आगे बढ़ा। मेरी पत्नी ने मुझे द्वार में प्रवेश करते देखा। दोनों मामियाँ भी वहीं बैठी थीं। सब के मन उदास थे।

मैं वहाँ पहुँचा तो बसन्ती बुआ जी की पलकें झपी हुई थीं।

बाँके बिहारी ने कहा, "भाभी जी ! नमस्कार।"

मेरी पत्नी बोलीं, "नमस्ते भैया बाँके बिहारी ! तुम भी चले आये, चलो अच्छा किया। गाँव तुमने कभी देखा भी नहीं था। अब देखा तुमने गाँव ? इसी कच्चे और चन्द पक्के मकानों के झुंड को गाँव कहते हैं।"

बाँके बिहारी मुस्करा कर बोला, "अभी तो आया ही हूँ भाभी ! अभी देखा कुछ भी नहीं। एक दिन यहाँ ठहर कर देखूँगा आपके गाँव को।"

तभी बसन्ती बुआ जी ने आँखें खोल दीं। शायद हम लोगों की बातें उनके कानों में पड़ गई थीं।

मेरी पत्नी ने धीरे से कहा, "बुआ जी ! यह आ गये हैं दिल्ली से।"

बसन्ती बुआ जी ने मेरी ओर देखा तो उनके मुरझाये हुए चेहरे पर प्रसन्नता की रेखाएँ खिंच गईं। वह बोलीं, "तुम आ गये बेटा ! मेरा बड़ा मन हो रहा था तुम्हें देखने को। इसीलिए मैंने राजबाला से पत्र लिखाया था।"

उनकी दशा देखकर मेरा दिल भर आया। मैं उनकी खाट की पट्टी के पास बैठ कर बोला, "यह क्या दशा करली बुआ जी ! आपने अपनी ? अभी चार महीने पूर्व जब मैं यहाँ से गया था तो आप बिल्कुल स्वस्थ थीं।"

बसंती बुआ जी मुस्करा कर बोलीं, "ऐसी दशा क्या कोई अपनी कभी करना चाहता है बेटा ! परन्तु जब हो जाय तो क्या किया जाय ? परमात्मा की जैसी इच्छा है, वैसा हो रहा है और जो हो रहा है उसे शांति के साथ सहन कर रही हूँ। अब बहुत दिन की मेहमान नहीं हूँ।"

उनकी बात सुनकर मेरी आँखों से आँसू ढुलक कर भूमि पर गिर पड़े। उनकी यह दशा देखकर मैं तनिक परेशान सा हो उठा।

वह मुस्करा कर बोलीं, "बावला कहीं का। तू भी रो रहा है। तू रोयेगा तो मानसिंह और रिसालसिंह की क्या दशा होगी ? मैंने तुझे इन्हें समझाने और ढाडस बँधाने के लिए ही तो बुलाया है।"

मैंने जेब से रूमाल निकालकर अपनी आँखें पोंछते हुए कहा, "रोता भी कोई जान-पूछ कर नहीं है बुआ जी ! जब दिल भर आता है तो आँसू आप-से-आप आँखों से बरसने लगते हैं। अब धैर्य से अपने को रोकने का प्रयास करूँगा।"

वसंती बुआ जी का बदन चार हड्डियों का ढाँचा मात्र रह गया था परन्तु आँखें वैसी ही मोटी-मोटी कटारेदार दमदमा रही थीं। मानो सारे शरीर का प्राण उनके नेत्रों में ही समा गया था। उनका कंठ-स्वर भी क्षीण नहीं पड़ा था। वाणी में वही मिठास था, जो मैंने उस समय सुना था जब आज से बीस वर्ष पूर्व मैं अपनी शादी के पश्चात् इस गाँव में आया था।

उनका वही रूप इस समय मेरी आँखों के सम्मुख प्रतिमाकार खड़ा था। वह मुस्करा कर मुझ से परिहास में कह रही थीं, "लाला ! अकेले ही चले आये तुम तो। हम तो समझ रहे थे कि तुम अपनी अम्मा को भी साथ लाओगे।"

मैंने उनकी बात सुनकर मुस्कराते हुए कहा था, "माता जी नहीं आ सकीं बुआ जी ! उनकी तबियत ठीक नहीं थी। परन्तु उन्होंने संदेश भेजा है आपके लिए ?"

"मेरे लिए ?" उन्होंने मुस्करा कर कहा था। और मेरी यह बात सुनकर आस-पास में खड़ी अन्य सब स्त्रियों के कान भी हम दोनों की बातों से बँध गये थे।

मैंने कहा था, "जी हाँ, आप के लिए। उन्होंने कहा है कि पिता जी को माता जी की तकलीफ़ के कारण रोटी-पानी की बड़ी कठिनाई हो रही है। आप मेरे साथ चली चलें तो पिता जी की कठिनाई दूर हो जाये।"

मेरी यह बात सुनकर वसंती बुआ जी खिल-खिला कर हँस पड़ीं थीं। कैसा निखार था उस समय उनके चेहरे पर कि आँखों को बड़ा सुख मिलता था उनकी ओर टकटकी लगाकर देखने में।

आज वही वसंती बुआ जी मेरे सम्मुख अचेत सी खटिया पर पड़ी अपने जीवन के अंतिम श्वाँस गिन रही थीं। वह जीवन का पुष्प कुम्हला कर सूख जाना चाहता था।

मैं और बाँके बिहारी बुआ जी की खाट के पास पड़ी दूसरी खाट पर बैठ गये। बुआ जी एक टक मेरी ओर देख रही थीं।

वह धीरे-धीरे बोलीं, "बेटा ! जिस घर में पैदा हुई थी, उसी में अब इस मिट्टी को छोड़ जाऊँगी । मेरी इस बीमारी में मानसिंह, रिसालसिंह और इन दोनों की बहुओं ने मेरी जितनी सेवा की है उतनी क्या किसी के बेटा-बेटी भी करेंगे ?"

बुआ जी की बात सुनकर मैं बोला, "इसमें कोई संदेह नहीं है बुआ जी ! आज समय बड़ा नाजुक चल रहा है । अपने कर्त्तव्य के निभाने वाले बिरले ही व्यक्ति निकलते हैं। परन्तु मैं गत बीस वर्ष से देख रहा हूँ कि मामा जी मानसिंह और रिसालसिंह दोनों ही बहुत नेक हैं।

दोनों ही आपको अपनी माता के समान आदर देते हैं।"

मेरी यह बात सुनकर बसंती बुआ जी मुस्करा कर बोलीं, "बेटा ! माँ तो मैं हूँ ही इनकी। चाहे गर्भ से इन दोनों ने मेरी माँ के जन्म लिया था, परन्तु माँ के सब काम मैंने ही पूरे किये हैं।

मैं जब दस वर्ष की थी तभी मेरी माँ बीमार हो गई थीं। एक दिन अचानक बैठे-बैठे उनके बदन पर फ़ालिज गिर गया। उनका तमाम बदन बेकार होकर ज़मीन पर गिर पड़ा। बापू रोटी खाते-खाते उधर दौड़े। बड़ी कठिनाई से उन्होंने माँ को सँभाल कर उठाया और खटिया पर लिटा दिया ।

माँ की खटिया बेटा ! ठीक इसी जगह बिछी रहती थी जहाँ इस समय मेरी खटिया बिछी है। ठीक इसी जगह से माँ की मिट्टी उठी थी और यहीं से मेरी मिट्टी भी एक दिन उठेगी।"

मैंने पूछा, "फिर क्या हुआ बुआ जी ?"

बुआ जी बोलीं, "बस उसके पश्चात् माँ का स्वास्थ्य फिर लौट कर नहीं आया। वह खटिया से उठ कर चार पग भी ज़मीन पर न चल सकीं।

उस समय मानसिंह पाँच वर्ष का था और रिसालसिंह तीन वर्ष का । आयु मेरी भी कुछ अधिक नहीं थी । केवल आठ वर्ष की ही थी मैं । परन्तु हमारे घर में जो कुछ गुज़र रहा था उसका पूरा ज्ञान था मुझे ।

माँ की बीमारी में मैंने आठ वर्ष की अवस्था में ही घर का भार सँभाल लिया । अपने दोनों भय्यों को छाती से लगाया और माँ की भी सेवा करती थी, जितनी कुछ मुझ से बनती थी ।

समय बीतता गया और मानसिंह तथा रिसालसिंह बड़े होते गये । माँ उसी दशा में खटिया पर पड़ी रहती थीं । हिलना-जुलना भी उनके लिए असम्भव था । परन्तु बेटा ! उनका इस तरह पड़ा रहना भी मुझे कितना बल देता था कि क्या कहूँ तुमसे ? उनकी सेवा का भार मुझे फूल-सा लगता था । पता नहीं कहाँ से इतनी शक्ति आ गई थी मेरे बदन में कि मैं घर का सारा काम अकेली ही सिमटा लेती थी और बापू की रोटी भी खेत पर जा कर उन्हें दे आती थी ।

मेरे बापू मुझे बड़ा दुलार करते थे । मुझे दूर से ही अपनी रोटियाँ लाते देख लेते तो हल छोड़ देते थे । और जब रोटी खाने बैठते थे तो पहला प्रश्न यही करते थे, "तेरी माँ का जी कैसा है बसंती ?"

"जी तो अच्छा है बापू ! पर हकीम जी की दवा से कुछ आराम नहीं हो रहा ।" मैं कहती ।

"यह बीमारी ही बड़ी भयानक है बेटी ! इसमें आराम होना बहुत कठिन है । मैं तो कहता हूँ कि यह किसी तरह इसी प्रकार दस पाँच वर्ष और अटकी रहे तो घर का ढाँचा बना रहे ।" वह कहते ।

मैं आँखों में आँसू भर कर पूछती, "तो क्या माँ अब अच्छी नहीं होंगी बापू ?"

मेरी यह बात सुन कर बापू की आँखें भर आती थीं और वह निराशा भरे डबडबाये नेत्रों से मेरी ओर देखते थे । वह बोल नहीं पाते

थे एक शब्द भी। परन्तु उनकी डूबी हुई आँखों की रोशनी से मैं उनके मन का भाव जान लेती थी।

बापू का मन घबराये नहीं इसलिए मैं फिर बात बदल कर कुछ और-और बातें करने लगी थी उनसे और वह भी मेरी बातों में लग जाते थे।

इसी प्रकार पाँच वर्ष व्यतीत हो गये। मानसिंह आठ वर्ष का हो गया और रिसालसिंह छः वर्ष का। परन्तु सच जानो बेटा ! इन दोनों ने कभी मुझे तंग नहीं किया। स्वभाव के इतने गरीब थे दोनों कि मैंने टुकड़ा हाथ पर रख दिया तो खा लिया वरना भूखे ही फिरते रहे दिन-दिन भर।

माँ की बीमारी इतनी भयानक थी कि किसी-किसी दिन मैं खाना ही नहीं बना पाती थी। बस उन्हीं की देख-भाल में उलझी रहती थी सारा दिन। संध्या को जब बापू खेत से आकर उनको सँभाल लेते थे तो तब मैं चूल्हे में आग सिलगा पाती थी।

मेरी माँ को बड़ा गर्व था मुझ पर। पास-पड़ौस की औरतें जब उनके पास आकर बैठती थीं तो उनके सामने मेरी प्रशंसा करते-करते उनका हलक सूख जाता था।"

कहते-कहते अचानक उन्हें बेहोशी सी आ गई। मैं घबरा सा उठा कुछ।

बाँके बिहारी भयभीत सा होकर बोला, "यह क्या हो गया शर्मा जी !"

मेरी पत्नी, जो पास ही पीढ़े पर बैठी थीं, बोलीं, "घबराओ नहीं आप, यह अभी थोड़ी देर में सचेत हो जायेंगी। बस ऐसा ही कुछ दौरा सा पड़ जाता है और बोलते-बोलते ज़बान बन्द हो जाती है।"

तभी रिसालसिंह हकीम जी को अपने साथ लेकर आ गया। हकीम जी कोई अन्य नहीं थे, मेरी पत्नी के नाना जी ही थे।

मैंने खड़े होकर उन्हें प्रणाम किया।

नाना जी बोले, "तुम कब आये बेटा !"

"अभी-अभी आया हूँ नाना जी ! बसंती बुआ जी की तकलीफ का पत्र मिला, तो इन्हें देखने चला आया।" मैंने कहा।

"तुमने अच्छा किया बेटा ! कल बसंती मुझसे भी कह रही थी तुम्हें देखने के लिए।"

नाना जी ने बुआ जी की नब्ज़ देखी और एक नुस्खा लिखकर दिया। रिसालसिंह अत्तार की दूकान से दवा लेने चला गया।

नाना जी नुसखा लिखकर चले तो मैं और बाँके बिहारी भी उनके साथ हो लिए।

यहाँ से हम लोग घर पहुँचे तो वहाँ माजी ने चाय बना ली थी हमारे लिए।

चाय पीते-पीते मैंने नाना जी से पूछा, "यह एक दम ऐसी दशा कैसे हो गई बुआ जी की, नाना जी !"

नाना जी दर्द-भरे स्वर में बोले, "बेटा! यहीं तो भगवान् की कुदरत के सामने आदमी लाचार है। पिछले दिनों से यह कुछ बीमार चल रही थी। तभी गढ़मुक्टेश्वर के नहान् पर गाँव की गाड़ियाँ जाने लगीं। मैंने मना किया बसन्ती को कि यह वहाँ न जाये, परन्तु यह मानी नहीं। बोली 'चाचा ! नहा आऊँ गंगा। फिर पता नहीं गंगा-स्नान मिले, या न मिले।'

बस वहीं पर ऐसी ठंड खाई कि नमोनिया पड़ गया।"

मैंने पूछा, "ठीक तो हो जायेंगी नाँ !"

नाना जी निराशा भरे स्वर में बोले, "दशा बिगड़ती ही जा रही है बेटा ! एक-से-एक नायाब दवा मैं इसे दे चुका हूँ पर कोई कारगर ही नहीं हो रही। हिकमत की कोई दवा मैंने छोड़ी नहीं और बेचारे मान-सिंह और रिसालसिंह भी अपनी ताकत से बाहर होकर इलाज कर रहे हैं, लेकिन फ़ायदा नज़र नहीं आ रहा।"

नाना जी की बात सुनकर मेरा दिल जैसे बैठ गया।

नाना जी बोले, "बड़ी ही नेक लड़की है। हमारे परिवार में यूँ पचासों लड़कियाँ हैं, लेकिन जो गुण इस लड़की में मैंने देखे, वे और किसी में भी नहीं हैं। तुम्हारी माजी की हम उम्र ही है यह।" माजी की ओर संकेत करके बोले, "इससे लगभग पन्द्रह दिन बड़ी है। इसके पिता भी बड़े नेक आदमी थे। मुझसे पाँच वर्ष बड़े थे, परन्तु परमात्मा ने उनकी भी अधिक आयु नहीं लगाई। रिसालसिंह और मानसिंह बहुत छोटे ही थे, जब इनके माँ-बाप दोनों गुज़र गये थे। उनके पश्चात् बसन्ती ने ही इन्हें पाला और परवरिश की। यह घर उजड़ ही जाता यदि इस में बसन्ती पैदा न हुई होती।"

चाय पी कर मैं और बाँके बिहारी फिर बसन्ती बुआ जी के घर चले गये। उन्हें तभी-तभी होश हुआ था।

मुझे देखकर बोलीं, "मुझे बेहोशी सी हो गई थी बेटा! अब ठीक हूँ मैं। तुम बैठ जाओ खाट पर।

मैं तुम्हें सुना रही थी, अपने बचपन की कहानी। मेरे बापू और चाचा जी, यों रिश्ते में भाई-भाई तो थे ही, परन्तु मित्रता बहुत थी दोनों में और इसीलिए तुम्हारी माजी और मैं भी बचपन में साथ-साथ ही रहते थे।

चमेली मेरा बहुत सा काम कर जाया करती थी। जिस दिन यह देखती थी कि माँ की तबियत अधिक खराब है तो यह रिसालसिंह और मानसिंह को अपने घर ले जाती थी और वहीं पर इन्हें रोटी खिला देती थी। कभी-कभी खेत पर बापू की रोटियाँ भी पहुँचा देती थी।

मानसिंह अब आठ वर्ष का हो गया था और गाँव के अन्य ग्वालों के साथ अपनी गाय, भैंस और उनके लवारों को लेकर ढोरी में जाने लगा था। मैं इसे रोटी खिला कर भेजती थी और दोपहर के लिए दो मिस्सी रोटियाँ भी इसकी गाढ़े की चद्दर के पल्ले में बाँध देती थी।

मेरे बापू बड़े परिश्रमी किसान थे। एक हल की खेती करते थे।

दिन-रात खेतों पर ही रहते थे। मेरी बीमार माँ के पास दो घड़ी बैठने का भी उन्हें अवकाश नहीं मिलता था। किसान का जीवन ही ऐसा है कि उसे अपने आपको मिट्टी में मिला देना पड़ता है।

वह घर में बैठ कर माँ की सेवा में लग जाते तो हम सब का पेट कैसे पलता ? उनके सहारे के लिए उनका कोई भाई बन्धु नहीं था।

एक दिन बापू पेली के फटाव हल लेकर गये और सूरज की किरण निकलते-निकलते उन्होंने दो बीघा ज़मीन जोत डाली। परन्तु अब उन्हें लग रहा था कि मानो उनके बदन में जान नहीं रही। बदन टूट सा रहा था और सिर में बेहद दर्द था।

उन्होंने बैलों को हल से खोल कर खेत के किनारे खड़ी एक कीकर के तने से बाँध दिया और स्वयँ वहीं कीकर की छीदी-छीदी छाँय में खेत के डौले का तकिया लगाकर लेट गये।

मैं सुबह की रोटी बनाकर, माँ का हाल-चाल पूछकर, छोटे भय्या को रोटी खिलाकर उससे बोली, "रिसाल भय्या ! मैं बापू को खेत पर रोटी दे आऊँ। तू माँ के पास रहना। दगड़े में गाँव के आवारा बालकों में गिल्ली-डंडा खेलने मत निकल जाना। मुझे गली के बालकों में खेलता मिला तो आकर पीटूंगी।"

फिर बापू की रोटियाँ बोहिए में लगाकर, मट्ठे का लोटा हाँडी में से भरकर, माँ से बोली, "माँ ! बापू की रोटी दे आऊँ खेत पर। बस गई और आई। अधिक समय नहीं लगाऊँगी। तुम रिसालसिंह को अपने पास खेलते देखती रहना। यह घर से बाहर न निकल जाय।"

माँ सुबह से मुझे घर का काम करते देख रही थीं। सुबह उठकर मेरा चक्की पीसना, घर की झाड़ू-बुहारु करना, अपने दोनों भय्यों के मुँह हाथ धुलवाना, उन्हें साफ़ करना, बासी रोटी करना, माँ की बीमारी का काम करना, छोटे भय्यों को बासी रोटी खिलाना और फिर अपने बापू के लिए खेत पर रोटी लेकर जाना, ये मेरे नित्य सुबह के काम थे।

माँ का दिल भर आता था मुझे इस छोटी सी आयु में इतना काम

करते देखकर। उनकी आँखों में आँसू आ जाते थे और अपनी विवशता के प्रति ग्लानि से उनका हृदय भर जाता था। वह खटिया में पड़ी-ही-पड़ी छटपटाने लगती थीं।

वह आज भी आँखों में आँसू भर कर बोली, "बेटी ! दुनियाँ की माँएँ अपने बच्चों का काम करती हैं, परन्तु भगवान् ने मुझे इतना लाचार बनाकर खटिया में डाल किया है कि मैं बच्चों का कुछ काम करना तो दूर रहा अपने योग्य भी नहीं रही। उल्टी भार बनी पड़ी हूँ अपने बच्चों पर।

इस जीने से तो भगवान् मुझे उठा ही ले तो अच्छा है। तेरे सिर से एक भार तो टले।"

माँ की करुणापूर्ण बात सुनकर मेरा जी भारी हो गया। मेरे हृदय में माँ की ममता उमड़ आई और मेरे नेत्रों की सीपियाँ अश्रुओं से भर गईं। मैं भयभीत सी हो उठी उनकी बात सुनकर।

मैं बापू की रोटियों का बोहिया सिर पर रखे, हाथ में मट्ठे का लोटा लिए खड़ी थी। माँ की बात सुन कर खड़ी-की-खड़ी ही रह गई। मेरा दिल धड़कने लगा। मैं बोली, "माँ! तुम ऐसी बातें न किया करो। तुम्हें खाट में पड़े-ही-पड़े जब मैं प्यार से अपनी ओर देखते देखती हूँ तो तुम्हें क्या पता कि मुझ में काम करने का कितना उत्साह और बल आ जाता है ? तुम चाहे खाट में ही पड़ी हो, परन्तु यह घर भरा हुआ तो है। तुम नहीं रहेगी तो मैं किसका मुँह देखते-देखते यह घर का काम समेटूंगी ?

तुम्हारा काम करने में मुझे कितना सुख मिलता है माँ ! यह तुम क्या जानो ? जब मैं ही इसे भार नहीं गिनती तो तुम क्यों अपना जी हल्का कर लेती हो ?"

माँ अपनी आँखें पोंछते हुए बोली, "जा बेटी ! सूरज चढ़ आया। खाली पेट हल जोत रहे होंगे तेरे बापू। तेरी राह देख रहे होंगे।"

मैं बापू की रोटियाँ लेकर चलदी।

मुझे जाती देखकर माँ का हृदय अन्दर-ही-अन्दर खिल उठा। उसके मन ने कहा, "कितनी सुघड़ बहू बनेगी मेरी बसंती। जिस घर में भी जायेगी उजाला कर देगी। सारे घर के काम को फूल के समान सँभाल लेगी।

भगवान् मेरी बच्ची को ऐसा घर-वर दे कि जो मेरी बिटिया का मान कर सकें।"

मैं जंगल की सुहावनी हवा में इठलाती हुई बापू की रोटी लेकर अपने खेतों की ओर बढ़ चली। पूरे घर भर का भार सँभाला हुआ था मैंने और अपने बापू तथा माँ की आँखों की पुतली थी मैं, अपने भय्यों की प्यारी थी मैं, इस बात का मुझे गर्व था। मेरे अन्दर असीम साहस और बल था उस समय।

मैं मौज में गुनगुनाती जा रही थी। सावन की शीतल पवन बह रही थी और मेरे उभरते हुए माँसल बदन से टकरा रही थी। हवा मस्ती में टकराती थी तो मेरा रोम-रोम प्रकम्पित हो उठता था। जीवन धीरे-धीरे उभर कर मुस्करा रहा था मेरे बदन में और यह वही जीवन था जो पूरे घर-गृहस्थी के काम-काज को सामने खड़ा करके कहता था, 'पीछे हट रे काम! तू मेरे सिर पर चढ़ने आया है। मैं तुझ जैसे सहस्रों कामों को अपने पैरों के नीचे कुचल सकती हूँ। ध्यान रखना, जो फिर कभी सीना उभार कर मेरे सम्मुख आया। मेरे सामने जब आया करे तो अपना मस्तक झुका कर आया कर।' फिर गर्व से सीना फुला कर मस्त हवा को चीरती हुई मैं सिर पर बापू की रोटियों का बोहिया रखे हाथ में मट्ठे का लोटा लटकाये खेतों के डौले-डौले मेंढ़े मेंढ़े बटिया पर अपने खेतों की ओर बढ़ चली।

सामने ही कुछ दूरी पर हमारे खेत थे, गाँव से लगभग आधा मील दूर। कीकर के पेड़ के तने से बैलों को बँधे देखकर मैं समझ गई कि बापू ने हल छोड़ दिया।

मैं और आगे बढ़ी तो मुझे बापू कीकर के वृक्ष के नीचे खेत की मेंढ़ से सिर लगाये लेटे दिखलाई दिए।

मैं घबरा सी उठी कुछ। मेरा मन बड़ा विचलित हो उठा और हृदय की धड़कन कुछ बढ़ गई। मैं जानती थी अपने बापू को। इस प्रकार दिन में लेटते उन्हें मैंने कभी नहीं देखा था। आज उन्हें इस प्रकार लेटे देखकर मैं किसी अप्रत्याशित आशंका से हिल उठी। मेरा बदन स्वेदपूर्ण हो गया और पैरों की गति, उसी ओर को जिधर बापू लेटे थे, बढ़ गई।

मैं बापू के पास पहुँची तो मैंने दूर से ही आतुर शब्दों में पुकार कर कहा, "बापू!"

बापू के कानों में मेरे शब्द पड़े तो उन्हें लगा कि मानो उनके जलते बदन में कानों के द्वारा दो शीतल अमृत की बूंदों का प्रवेश हुआ। उनके मुँदे हुए नेत्र खुल गए और उन्होंने मेरी ओर देखा। फिर धीरे से बोले, "बसन्ती हलक सूख रहा है। तू पहले मुझे एक घूंट पानी पिलादे।"

मैंने सिर से रोटियों का बोहिया उतार कर अपने बापू के पास मट्ठे का लोटा रखा और उसे उस पर टिका दिया। फिर लोटा-डोर लेकर कुए की ओर लपकी। कुआ दूर नहीं था वहाँ से। पलक मारते हुए मैं पानी की लुटिया भर लाई और बापू के मुँह में थोड़ा सा पानी डाला।

बापू का बदन तीव्र ज्वर से जल रहा था। उनकी आँखें दहकते अंगारों के समान लाल हो रही थीं। सिर भभक रहा था। मुँह में थोड़ा पानी गया तो कंठ गीला हुआ और स्वर उभर कर ऊपर को आया। वह फिर धीरे से बोले, "बसन्ती! मुझे तू धीरे-धीरे घर को ले चल। मेरा दिल बैठा जा रहा है। पता नहीं क्या हो गया एक दम कि तमाम बदन पहले पसीने में लथ-पथ हो गया और फिर इतने ज़ोर

का ज्वर चढ़ा कि ऐसा प्रतीत होता है तमाम बदन को जलाकर राख कर देगा।"

मैंने अपनी ओढ़नी पानी में भिगोकर उसे निचोड़ा और बापू के मस्तक, हथेलियों और तलुवों पर धीरे-धीरे सहला कर रगड़ा तो उनकी जलन इस ऊपरी उपचार से कुछ कम हुई। मैं भय से घबरा सी रही थी। पानी का भीगा कपड़ा बापू के बदन से छुआते भय लग रहा था, परन्तु उस समय इसके अतिरिक्त और कुछ सूझा ही नहीं मुझे।

बापू को इससे कुछ शान्ति मिली और वह उठकर बैठे हो गए। उन्होंने आँखें खोलकर मेरी ओर देखा।

बापू बैठे हो गए तो मेरी भी कुछ जान-में-जान आई। मैंने तुरन्त आगे बढ़कर कीकर के पेड़ से अपने बैलों के जेवड़े खोल लिए, रोटी का बोहिया बगल में दबा लिया और मट्ठे को एक ओर ढुलका कर लोटा बोहिये में रख लिया।

फिर बापू के पास आकर बोली, "बापू! चलो, घर चलें।"

बापू धीरे से उठकर खड़े हो गये। मेरे कन्धे पर हाथ रखकर उन्होंने कुछ पैर गाँव की ओर बढ़ाये, परन्तु उनके पैर लड़खड़ा रहे थे। उनका बदन काँप रहा था और सिर-दर्द से चकरा कर आँखों के सामने अन्धेरा छा गया था।

वह बोले, "बसन्ती तनिक ठहर जा। दिल घबरा रहा है। मुझे यहीं बिठला दे और देख सामने के बाग में से दीनानाथ को बुला ला। मैं उसके सहारे गाँव पकड़ लूंगा।"

मैं बापू को धीरे से बिठलाकर चचा दीनानाथ के बाग की ओर दौड़ गई।

: ३ :

बापू बड़े साहसी व्यक्ति थे। साधारण ज्वर या अन्य किसी कष्ट को वह कुछ गिनते ही नहीं थे। मामूली ज्वर में कभी आजतक उन्होंने अपना काम बन्द नहीं किया था। ज्वर चढ़ा रहता था और वह हल जोतते रहते थे।

आपत्तियाँ उनके ऊपर कम नहीं आई थीं। गाड़ी भरा कुनबा था उनका। माँ, बाप और तीन बराबर के सगे भाई थे। हमारी अपनी दो हलों की शानदार खेती होती थी। वह सबसे बड़े थे और इसीलिए कभी बचपन से कोई काम नही किया था उन्होंने। हल बैलों का सब काम उनके दोनों भाई करते थे। ऊपर-नीचे का काम उनके पिता जी देखते थे।

परन्तु भगवान् की करनी का किसे पता था कि एक ही वर्ष के अन्दर-अन्दर यह पूरा ठाट इस तरह मलियामेट हो जायेगा। उनके अड़ी-कड़ी से दोनों जवान भाइयों और माता-पिता को काल इस प्रकार ग्रस लेगा, और वह अकेले ही खड़े रह जायेंगे, निराधार अकेले।

इस विपत्ति ने एक बार तो उन्हें पागल सा बना दिया था, परन्तु माँ ने उन्हें इस आपत्ति-काल में उस व्यथा के सागर में डूबते-डूबते अपने प्रेम और साहस का सहारा देकर उबार लिया।

उनका डूबता हुआ दिल थामने को वह न होतीं तो निश्चय ही वह पागल हो जाते।

माँ ने एक दिन उनसे कहा, "बसन्ती के बापू! भगवान् की करनी के सामने आदमी की शक्ति काम नहीं देती। जो हो चुका, उसी में डूबे रहोगे तो इन छोटे-छोटे बच्चों का क्या बनेगा? यह कुनबा कैसे पलेगा? खेत सूखे जा रहे हैं। कुछ पैदा नहीं होगी तो क्या खायेंगे?

आप मर्द हैं, मर्द बनिये। रोने के लिए तो औरतें होती हैं।

माँ की यह बात सुनकर बापू ने उनकी ओर देखकर कहा, "बसन्ती की माँ ! मैं धीरज तो बहुत धरने का प्रयत्न करता हूँ, परन्तु करूँ क्या ? उन खेतों में, जिनके डौले पर खड़ा होकर मैं अपने दोनों भय्यों को हल जोतते देखकर गर्व से फूल उठता था, जाने का मेरा साहस ही नहीं होता। मुझे भय सा लगने लगता है और बदन काँप उठता है। मेरी दृष्टि खेतों की ओर बढ़ती है तो मेरे दोनों भय्या मेरे सामने आकर खड़े हो जाते हैं।"

दूसरे दिन माँ बापू को अपने साथ हल लिवाकर खेत में ले गई और उन्होंने हल जुतवाकर अपने दोनों लड़कों को हल के दोनों ओर बिठलाकर कहा, "बसन्ती के बापू ! ये हैं तुम्हारे दोनों भय्या। तुमने आज तक कभी कुछ काम नहीं किया और अपने भय्यों की ही कमाई खाते रहे हो। अब तुम्हारे भय्या तुम्हें भगवान् ने इस बाल-रूप में दिये हैं। तुम्हें मेहनत करके इन्हें पालना है। अपना कर्त्तव्य भुलाकर क्या तुम रोते ही रहोगे ?"

माँ की बात सुनकर बापू अपने दोनों भय्यों का नाम लेकर रो पड़े और फिर आगे बढ़कर अपने दोनों बेटों को बारी-बारी से गोद में उठाकर कहा, "बसन्ती की माँ ! मैं आज से इन्हें मानसिंह और रिसालसिंह ही कहा करूँगा और तू भी इन्हें मानसिंह और रिसालसिंह ही कह कर पुकारा कर। अब ये ही तेरे देवर हैं और ये ही तेरे बेटे हैं।"

उस दिन से बापू ने इन दोनों के नाम मानसिंह और रिसालसिंह ही लिए। वह इन्हें साथ लेकर हल जोतने जाते थे। माँ साथ जाती थीं उनके। इन्हें खेत के डौले पर बिठला देते थे और स्वयं काम पर जुट जाते थे।

उस समय मानसिंह की आयु ढ़ाई वर्ष और रिसालसिंह की छः महीने की थी।

बापू ने अपने अकेले ही कन्धों पर खेती का पूरा भार सम्भाल

लिया। हम सब धीरे-धीरे बड़े होने लगे। माँ ने घर के काम को ऐसा सम्भाला कि सारे काम को अपने सामने कर लिया।

चक्की-चूल्हे का सब काम निपटाकर वह चरखा लेकर बैठती थीं तो इतना सूत कात डालती थीं कि गाँव की औरतें देखकर दाँतों तले उँगली दबा लेती थीं।

माँ स्वभाव की भी इतनी मीठी थीं कि पास-पड़ौस की औरतों का जमघट लगा रहता था उसके पास। कभी किसी के काम से मुँह नहीं मोड़ती थीं। जो कोई भी गाँव की स्त्री अपना कोई काम कराने उनके पास आ जाती थी, तो वह उसके काम में हाथ बँटाती थीं।

मैं ठीक अपनी माँ के साँचे में ढलती जा रही थी और अपनी माँ के हर काम को आँखों में से निकालकर करने का प्रयत्न करती थी। इसीलिए इतनी थोड़ी सी आयु में ही मुझे घर का सब काम करना आ गया था।

माँ का रूप भी लाखों औरतों में अलग निखरा हुआ प्रतीत होता था। चिरवा आँखें और नाक नुकीली तोते की तरह थी। उनका माथा उभरा हुआ था। माँ मुस्कराती थीं तो फूल झरते थे और क्रोध करती थीं तो तब भी वह बड़ी प्यारी लगती थीं; परन्तु मुझ पर वह क्रोध कभी करती ही नहीं थी। मैंने बहुत कम उन्हें क्रोध करते देखा था।

मैं प्रारम्भ से ही अपने छोटे भय्यों को इतना दुलार करती थी कि प्राण देती थी इन पर। इनका कोई काम माँ को करने ही नहीं देती थी और ये भी मेरे साथ-साथ ही दो लटकनों के समान लगे फिरते रहते थे।

बापू का बदन टूट रहा था और क्षण-क्षण में फरहरी से आकर रोंगटे खड़े हो जाते थे। वह बार-बार मेरी भीगी ओढ़नी को माथे पर फेर कर हाथों को रगड़ कर ज्वर की ज्वाला को कुछ शांत कर लेते थे।

तभी मैं चचा दीनानाथ को अपने साथ लेकर वहाँ पहुँच गई।

चाचा जी पास आकर बोले, "कैसा जी है भय्या ! अभी-अभी तो तू ठीक-ठाक हल जोत रहा था। यह क्या हो गया तुझे ?"

बापू ने चचा दीनानाथ की ओर कातर दृष्टि से देखते हुए कहा, "ज्वर चढ़ आया भैय्या ! बदन इतना गिर गया है कि चला ही नहीं जा रहा। तनिक घर तक पहुँचा दे मुझे।"

चचा दीनानाथ ने सहारा देकर उन्हें खड़ा किया और अपनी कामर पर लिटा कर वह धीरे-धीरे गाँव की ओर बढ़ लिये।

मैंने रोटियों का बोहिया, मट्ठे का लोटा, नाड़ी-साँटे और बैलों की डोर सँभाली और मैं भी पीछे-पीछे हो ली।

चचा दीनानाथ इस प्रकार बापू को लेकर घर की देहली पर चढ़े तो माँ का दिल धक्क-धक्क करने लगा। उनके फटे हुए नेत्र केवल देखते भर रह गये। एक शब्द भी उनकी जबान पर न आया।

मैंने लपक कर एक खटिया अपनी माँ के पास ही बिछादी और उस पर गद्दा बिछा कर बोली, "चचा ! बापू को यहाँ लिटा दो।"

दीनानाथ ने बापू को खाट पर लिटा दिया और बोले, "बेटी ! तू फिकर न कर, मैं हकीम जी को बुला कर लाता हूँ अभी।"

माँ खाट में पड़ी-ही-पड़ी रो पड़ीं। उन्हें वह दिन याद आ रहा था जब वह चंगी-भली दौड़-दौड़ कर काम करती फिरा करती थीं और फिर उन्हें ऐसा ज्वर चढ़ा था कि जिसने आज तक उसका पीछा नहीं छोड़ा। पूरे चार वर्ष बीत गये इसी प्रकार खाट में पड़े-पड़े।

वह भयभीत हो उठीं कि यदि मेरे बापू की भी वही दशा भगवान् ने कर दी तो क्या होगा ?

चचा दीनानाथ तभी हकीम जी को लेकर आ गए। हकीम जी ने नाड़ी देखी और मुझे सांत्वना देकर बोले, "चिन्ता न करो बेटी ! तकलीफ

तो भयानक है, परन्तु भगवान् ने चाहा तो सब ठीक हो जायगा। घबराने की कोई बात नहीं है।"

रिसालसिंह अपनी माँ के पास खाट की पट्टी पर बैठा था। बापू को इस प्रकार आते देख कर उसकी आँखों में भी आँसू आ गये।

हकीम जी चले तो रिसालसिंह उनके साथ दवाई लेने चल दिया और मार्ग में बोला, "हकीम जी! मेरे बापू अच्छे हो जायेंगे?"

बच्चे के मुँह से यह बात सुनकर हकीम जी का दिल भी व्यथित हो उठा। वह आश्वासन के स्वर में बोले, "ठीक क्यों नहीं हो जायेंगे बेटा! ज्वर में क्या आदमी मरते हैं? तेरे बापू बिलकुल ठीक हो जायेंगे। तू दवा ले जाकर पिलाना अभी।"

रिसालसिंह के पीछे-पीछे मैं भी आ रही थी दवा लेने के लिए। मैंने रिसालसिंह की बात सुनी तो मेरा मन भी व्याकुल हो उठा। मैंने आगे बढ़ कर रिसालसिंह को प्यार से गोद में उठा लिया और बोली, "बापू अभी ठीक हो जायेंगे भय्या! हकीम जी ऐसी दवा देंगे की पीते ही ठीक हो जायेंगे।"

यह सुन कर रिसालसिंह बोला, "दवा तो माँ भी पीती हैं बसंती! और कितने दिन हो गये ठीक ही नहीं होतीं। दवा पीकर कहीं कोई ठीक होता है?"

रिसालसिंह की भोली बात सुनकर मेरे पैर भारी हो गये। मैंने अपने भय्या के मुँह पर देखकर कहा, "दवा से ही ठीक होते हैं भय्या! बीमारी का इलाज दवा ही तो है। माँ भी ठीक हो जायेंगी।"

"माँ कब ठीक हो जायेंगी बसंती? क्या वह फिर खाट से उठकर चलने-फिरने लगेंगी?" उसने आश्चर्य से पूछा।

"चलने-फिरने क्यों नहीं लगेंगी भय्या!" यह जानते हुए भी कि अम्मा की बीमारी अब ठीक होने वाली नहीं है, मैंने उसे सांत्वना देने के लिए कहा।

मैं दवा लेकर लौटी और मैंने बापू के पास बैठकर उन्हें दवा पिलाई।

मैं दवा पिला ही रही थी कि तभी मैंने देखा की मानसिंह भी सामने खड़ा था। वह रो रहा था जोर-जोर से।

वह ढोरी में से भागा चला आ रहा था। किसी ने उससे जाकर कह दिया था कि तेरे बापू को ज्वर चढ़ आया है। उससे रुका नहीं गया वहाँ।

बापू को आराम से लिटाकर मैंने आगे बढ़कर मानसिंह के नेत्र पोंछे और धीरे से कहा, "घबरा नहीं भय्या ! बापू ठीक हो जायेंगे।"

अभी तक माँ के मुख से एक शब्द भी न निकला था। उन्होंने आज कई बार उठने का प्रयास किया, परन्तु वह उठ नहीं सकीं। आँखों की प्यालियों में आँसू भरे, पत्थर की प्रतिमा के समान, ज्यों-की-त्यों खाट पर पड़ी देख रही थीं, जो हो रहा था।

जब मैंने बापू को दवा पिला दी तो उन्होंने धीरे से कहा, "वसन्ती !"

"हाँ माँ !" मैं बोली।

"क्या हो गया तेरे बापू को ?"

"बहुत तेज़ ज्वर है माँ ! पता नहीं कैसे चढ़ आया ? मैं खेत पर पहुँची तो कीकर के वृक्ष के नीचे खेत के मेंढ़े पर सिर धरे पड़े थे। इन्हें खड़ा करके मैंने अपने साथ-साथ लाने का प्रयत्न किया तो इनके पैर लड़खड़ाने लगे। चल नहीं सके। तब दीनानाथ चचा को बुलाकर लाई और वह पट्ठी पर डालकर इन्हें यहाँ तक लाये।"

अब दवा पिलादी है हकीम जी की। हकीम जी ने कहा है कि आज रात में ज्वर टूट जाएगा।" मैंने बतलाया।

माँ ने ठण्डी साँस भर कर आँखें बन्द कर लीं। वह गुम सी हो गईं कुछ देर के लिए, मानो चेतना ही नहीं रही उसके बदन में और फिर नेत्र खोले तो उनके तीनों बच्चे उनके सामने खड़े थे। उन्होंने आँखों

में आँसू भर कर अपने मन में कहा, 'भगवान्! तू क्यों इतना निर्दय बन रहा है इन अबोध बच्चों के लिए ? पहले तूने इनकी माँ को असहाय कर दिया। अब क्या इनके बापू को भी तू इनसे छीन लेना चाहता है ?'

हम तीनों अपनी बीमार माँ की खाट की पट्टी से लगाकर बैठ गये। तीनों की आँखें आँसुओं से भरी हुई थीं और तीनों ही माँ की ओर असहाय दृष्टि से देख रहे थे।

"माँ तू अच्छी हो जायगी। तू फिर हमारी ही तरह चलने-फिरने लगेगी। बसंती कह रही थी।" रिसालसिंह बोला।

मैंने प्यार भरे नेत्रों से रिसालसिंह की ओर देखा।

मेरी माँ ने अपना निर्जीव सा हाथ आगे बढ़ा कर रिसालसिंह के सिर पर रखते हुए कहा, "हाँ बेटा ! मैं ठीक हो जाऊँगी। चलने-फिरने लगूँगी तुम्हारी तरह। चलने-फिरने क्यों नहीं लगूँगी मैं ?"

वह अपने फूल से बच्चे के कोमल हृदय पर यह कह कर, कि मैं नहीं बचूँगी, आघात नहीं पहुँचा सकती थीं।

तभी बापू ने नेत्र खोले और धीमे स्वर में कहा, "बसंती !"

यह सुनते ही विद्युत-गति के साथ हम तीनों बच्चे एक साथ उठ खड़े हुए और बापू के मुख पर देखा।

मैं आगे बढ़कर बोली, "हाँ बापू !"

बापू बोले, "बेटी पानी दे ज़रा सा। हलक सूख रहा है।"

मैं पानी का गिलास भर लाई और दो घूँट पानी बापू को पिलाया। पानी पीकर बापू फिर लेट गये। उन्हें लग रहा था कि दवाई उनके बदन में अपना कार्य कर रही है।

उनके बदन की ऐंठन बन्द होती जा रही थी और तपन सा आवेग भी कुछ हल्का पड़ रहा था। आँखों की पुतलियों का बोझ भी कुछ कम हुआ था और दिल की घबराहट में भी अन्तर आया था।

वह धीरे से बोले, "बसंती ! तू घबराना नहीं बेटी ! मैं ठीक हो

जाऊँगा। मेरी तबियत अब पहले से बहुत ठीक है। मेरे सिर के दर्द में भी कमी है।"

बापू की आशा भरी बात सुनकर हृदय में धैर्य धारण करके भी मैं आँखों में रो पड़ी। परन्तु तुरन्त ही अपने नेत्र पोंछ लिए और मैं बापू की खाट की पट्टी पकड़ कर धरती पर उकड़ूँ बैठती हुई बोली, "अवश्य ठीक हो जाओगे बापू ! हकीम जी ने भी यही कहा है। उन्होंने कहा है कि आज रात में ज्वर बिल्कुल ठीक हो जाएगा।

अब तुम दूसरी खुराक पी लो दवा की।"

बापू ने दूसरी खुराक पी और फिर आराम से लेट गये। उन्होंने आँखें बन्द कर लीं और लिहाफ ऊपर को सरका कर सोने का प्रयास किया।

तब मुझे तनिक धैर्य बँधा। मैं माँ की खाट के पास जाकर बोली, "माँ ! अब बापू की तबियत कुछ ठीक होती जा रही है।"

माँ आँखों में आँसू भर कर बोलीं, "बेटी ! तुम्हारे भाग्य से भगवान् इन्हें ठीक कर दें। मैं तो बेकार हुई खाट में पड़ी ही हूँ। यदि भगवान् ने इन्हें भी खटिया पर बिठला दिया तो क्या होगा ?"

मेरे मन में अब तनिक धैर्य बँधा तो मुझे ध्यान आया कि आज दिन भर मैंने चूल्हे में आग ही नहीं सिलगाई थी। मेरे दोनों फूल से भय्या भूखे ही फिर रहे थे और बीमार माँ को भी कुछ खाने को न मिला था।

मैंने चूल्हे में आग सिलगाई तो तभी चमेली आ गई। चमेली ने मुझे एक ओर करके स्वयँ चूल्हे का काम सँभाल लिया। उस दिन खाना चमेली ने ही बनाया और मैंने रिसालसिंह और मानसिंह को परस कर दिया।

: ४ :

बापू की तबियत दूसरे दिन कुछ ठीक हुई, परन्तु यह बीमारी कुछ ऐसी थी कि जिसने उनके सारे बदन का सत निचोड़ कर रख दिया था। उन्हें आश्चर्य होने लगा था कि उनका वह पौरुष एकदम कहाँ विलुप्त हो गया।

छोटे भाइयों की मृत्यु का आघात उनके हृदय पर इतना गहरा हुआ था कि उसने उनका दिल बड़ा कमज़ोर कर दिया था। लाख साहस बटोरने पर भी वह अपने को अशक्त सा ही पाते।

दस-बारह दिन में कहीं जाकर वह खाट से उठ सके थे।

अब जब वह ठीक हो गए तो हकीम जी ने बतलाया, "जैरामसिंह! भगवान् को लाख-लाख धन्यवाद दो कि उसने तुम्हारी रक्षा कर ली। वरना इस रोग से बहुत कम लोग बचते हैं। अब आगे से ध्यान रखना कि कोई कठिन परिश्रम का काम न करना, वरना प्राणों से हाथ धोने पड़ेंगे।"

हकीम जी की बात सुनकर बापू का जी और घबराया और मस्तिष्क में यह सवाल पैदा हुआ कि जब इतना कठिन परिश्रम करने पर भी वह अपने परिवार की आर्थिक दशा को नहीं सँवार पाये तो अब क्या होगा?

इन दस दिनों में मैंने अपने पिता की इतनी सेवा की कि रात-दिन एक कर दिये। मुझे न अपने खाने-पीने की सुधि रही और न अन्य किसी कार्य की। चमेली ने मेरी बड़ी सहायता की इन दिनों में।

मानसिंह भी चौबीसों घण्टे बापू की खटिया से ही लगा बैठा रहा और रिसालसिंह कभी अपनी माँ की खाट के पास जा बैठता था और कभी मेरे और मानसिंह के पास आ खड़ा होता था।

आज दस दिन पश्चात् जब बापू ने मूँग की दाल का पानी पिया

और दो घड़ी खाट पर उठकर बैठे तो घर भर में छाई हुई उदासी का वातावरण दूर हुआ।

माँ ने पूछा, "बसंती के बापू ! अब कैसी तबियत है तुम्हारी ?"

बापू ने माँ के आँसू-भरे नेत्रों पर अपनी दृष्टि फैलाकर कहा, "रो क्यों रही है पगली ! मैं तो बिलकुल ठीक हूँ अब। बीमारी तो सचमुच ऐसी आई थी कि एक बार मुझे बचने की आशा ही नहीं रही थी, परन्तु अब लग रहा है कि छोड़ गई मृत्यु मुझे।"

माँ का गला रुँधा हुआ था। शब्द ज़बान तक आ-आकर हलक में ही रुक जाते थे। वह करुणा-भरी दृष्टि से बापू के चेहरे पर देख रही थीं।

तभी मैं और रिसालसिंह हकीम जी के यहाँ से दवा लेकर आ गये।

मुझे देखकर बापू और माँ दोनों के हृदयों में स्नेह का सागर उमड़ आया। माँ बोलीं, "बसंती के बापू ! बसंती ने बचा लिया तुम्हें। वरना मुझे तो तनिक भी आशा नहीं रही थी।"

बापू बोले, "इसमें कोई सन्देह नहीं रामप्यारी ! बसंती को मैं बेटी नहीं, एक देवी मानता हूँ, जिसने इस परिवार के उद्धार के लिए ही जन्म लिया है। मेरा हृदय रो उठता है अन्दर-ही-अन्दर अनेकों बार जब मैं इसे इतनी थोड़ी आयु में इतना कठिन परिश्रम करते देखता हूँ। परन्तु करूँ क्या ? इसके अतिरिक्त और कोई सहारा भी तो नहीं है।"

ये बातें चल ही रही थीं कि तभी चचा दीनानाथ आ गये।

आज बापू को खटिया पर बैठे देखकर उनका भी हृदय हर्षित हो उठा। वह मुस्करा कर बोले, "आज तो तबियत कुछ ठीक मालूम देती है भय्या जैरामसिंह !"

बापू बोले, "आ जाओ भय्या दीना ! बैठ जाओ। आज

सचमुच ही मेरी तबियत ठीक है। दिल की धड़कन भी कुछ कम है और बदन में ऐंठन भी नहीं है। बुखार भी उतर गया है।"

"बहुत बुरी बीमारी ने धर दबाया था तुम्हें एक दम भय्या ! मैं तो घबरा गया था उस दिन तुम्हारी दशा देख कर।" चचा दीनानाथ बोले।

"घबराने की तो बात ही थी भय्या ! मुझमें कुछ रहा थोड़े ही था उस दिन। हाथ-पैरों ने बिलकुल काम करना बन्द कर दिया था। तुम कमर पर डाल कर न लाते तो मैं घर तक भी न आ पाता।

भला हो बेचारे हकीम जी का कि जिन्होंने मुझे जिला लिया। वरना बचने की आशा मुझे तो नहीं रही थी।" बापू बोले।

"ऐसी हारी हुई बातें न करो भय्या ! बच्चों को निराशा होती है ये बातें सुनकर। भगवान् इन बच्चों के भाग्य से तुम्हें स्वस्थ कर दे, मैं तो हृदय से यही कामना करता रहा हूँ।" चचा दीनानाथ बोले।

"इन बच्चों के भाग्य से ही बच गया हूँ दीना ! वरना तो बचना कठिन ही था।

और सच बात यह है कि बसंती और मानसिंह ने रात-दिन मेरी खाट की पट्टी से लगे रहकर मेरी इतनी सेवा न की होती, तो भी मेरा बचना कठिन था।" बापू बोले।

बापू के ये शब्द सुनकर चचा दीनानाथ की दृष्टि मुझ पर गई। उन्होंने स्नेह और श्रद्धा भरे नेत्रों से मेरी ओर निहारा और सच्चे हृदय से बोले, "भय्या ! सच बात तो यही है कि तुम्हें भगवान् ने इस कन्या के भाग्य से ही छोड़ दिया। वरना मृत्यु के दूत तो तुम्हें लेने के लिए आ ही गये थे।"

दीनानाथ की बात सुनकर माँ डबडबाये नेत्रों से बोलीं, "तुम ठीक कह रहे हो लाला जी ! यह बसंती का ही भाग्य है जिसने इन्हें बचा लिया, वरना मैं तो बिलकुल ही निराश हो चुकी थी।"

मैं आगे बढ़कर मुस्कराती हुई बोली, "लो बापू ! दवा पी लो अब और इन बातों को छोड़ो। हँसी-खुशी की बातें करो, जिनसे मन बहले। ये उदासी की बातें मुझे अच्छी नहीं लगतीं।"

मेरी बात सुनकर माँ, चचा दीनानाथ और बापू, तीनों के चेहरे खिल उठे।

दीनानाथ बोले, "बसंती ठीक कह रही है भय्या ! अब बीमारी की कोई बात न करो। इसका दिल पर बुरा प्रभाव पड़ता है। खा-पीकर कुछ दिनों में चंगे हो जाओ और अपना काम-काज सँभालो। मैंने तुम्हारे तीनों खेत जुतवा कर बुआ दिये हैं। कोई चिंता करने की बात नहीं है।

पर भय्या ! बसंती जैसी बेटी भगवान् सब को दे। यह बेटी नहीं है तुम्हारी, यह तो बेटा ही है। इस बार तुम्हारे तीनों खेतों में सारा अनाज इसी ने बीजा है। कम्बख्त एक नौकर था मेरे पास, इस बीच में वह भी बीमार पड़ गया।"

दीनानाथ की यह बात सुनकर माँ और बापू के हृदय गद्गद् हो उठे। उन्हें लगा कि जैसे उनके नेत्रों का धुँधला पड़ता हुआ प्रकाश एक दम दमदमा उठा।

उन्होंने मेरे चेहरे पर श्रद्धा-भरी दृष्टि से देखा और दो-दो आँसू भर लाए दोनों के नेत्र।

ये स्नेह के आँसू थे, अपनी प्यारी बिटिया के लिए, जो आज इस समय इस पूरे परिवार की आधार-शिला थी, जिसके ऊपर ये चारों प्राणी ठहरे हुए थे। इसी के आसरे इस निराशापूर्ण वातावरण में भी आशा की झलक देखने का स्वप्न देख रहे थे।

बापू बोले, "भय्या ! दीनानाथ ! मैं तुझे किन शब्दों में धन्यवाद दूँ कि तू इस आड़े समय में मेरे काम आया। भरे गाँव में मुझे तेरे अतिरिक्त अन्य किसी भी व्यक्ति पर भरोसा नहीं है।" कहते-कहते

उनकी आँखों में आँसू आ गये। वह गम्भीर वाणी में बोले, "भय्या दीनानाथ ! मैं जानता हूँ कि तू अपने भय्या को कभी भुलायेगा नहीं ..."

बस इतना कहकर ही उनकी जबान रुक गई। वह कहना कुछ और भी चाहते थे परन्तु कहना उचित नहीं समझा उन्होंने इस समय। वह कोई निराशाजनक बात कहकर घर के आशापूर्ण वातावरण में खलबली पैदा करना नहीं चाहते थे।

बापू की बात सुनकर चचा दीनानाथ बोले, "भय्या जैरामसिंह ये क्या बातें करने लगे तुम ! तुम्हारे लिए दीना आधी रात हाजिर है, जिस काम के लिए भी तुम चाहो। मेरा रोम-रोम तुम्हारी सेवा के लिए सदा तय्यार रहेगा। तुम चिंता न करना किसी काम-काज की। जब तक पूरी तरह आराम न हो जाय, काम को हाथ न लगाना।"

चचा दीनानाथ की बात सुनकर बापू की आत्मा को संतोष हुआ। वह इसी बात से घबरा रहे थे कि यदि उनके शरीर ने काम न दिया तो उनका काम कैसे चलेगा। उन्होंने चचा दीनानाथ के चेहरे पर आशा-भरी दृष्टि से देखा।

बापू दस-पन्द्रह दिन में खाट से उठ खड़े हुए और आज घूमते हुए अपने खेतों तक भी पहुँचे। मैं और मानसिंह उनके साथ थे। खेत में बोई हुई फ़सल के नन्हे-नन्हे अंकुर उग आये थे।

उन्हें देखकर बापू बोले, "बसंती ! यह खेती इस वर्ष की तेरी बोई हुई है। इस वर्ष खूब अनाज होगा।"

मैं मुस्करा कर बोली, "मैंने क्या किया है इसमें बापू ? खेत तो तुमने जोत ही रखे थे। मैंने तो अनाज पबेड़ दिया था बस और उस पर एक बार फिर से चचा दीनानाथ ने हल बाह दिया था। परन्तु जमा बहुत अच्छा है अनाज। एक भी दाना शायद ऐसा नहीं रहा कि जो अंकुर न बना हो।"

तभी चचा दीनानाथ भी अपने पास के खेत से उधर आ गये और मुस्करा कर बोले, "देखी भय्या ! तुमने बसन्ती की खेती। एक-एक दाना फूट कर निकल आया है बाहर। मैं कहता हूँ, जितना अनाज तुम्हारे इन खेतों में इस वर्ष पैदा होगा, उतना आजतक कभी भी न हुआ होगा।"

बापू मुस्करा कर बोले, "मैं अभी-अभी यही तो कह रहा था बसन्ती से दीना ! अनाज खूब जमा है।"

मैं यह सुनकर तनिक लजा सी गई, परन्तु हृदय मेरा आनन्द से खिल उठा था। मैं अपने भय्या मानसिंह के गले में बाँह डाल कर बोली, "मानसिंह ! यह खेती अब तुम्हें सम्भालनी है। तुम अभी छोटे ही हो, लेकिन बापू के साथ अब खेत पर आया करो। ढोरी में मैं अब रिसालसिंह को भेजने लगूँगी।"

"रिसालसिंह को !" आश्चर्य-चकित होकर बापू ने कहा।

मैं मुस्करा कर बोली, "रिसालसिंह सात वर्ष का हो गया है अब बापू ! वह जा सकता है ढोरी में। बड़ा समझदार है वह। तुम जितने दिन बीमार रहे, वह बराबर मुझसे अकेले में पूछता रहा, 'बसन्ती जीजी ! बापू कब तक ठीक हो जायेंगे ?"

बापू के हृदय में आनन्द की लहर दौड़ गई अपने बच्चे की अपने प्रति इतनी उत्कंठा की बात सुनकर।

घर लौटे तो माँ खाट में लेटी-ही-लेटी मुस्करा दीं उन्हें देख कर और फिर धीरे से बोलीं, "आज तुम्हें खेत पर जाते देखकर मेरा मन आनन्द से भर उठा बसन्ती के बापू ! कैसी भयानक बीमारी ने आ घेरा था तुम्हें ? एक तूफान सा आ गया था हम सब के जीवन में। ऐसा प्रतीत होने लगा था कि कहीं इन बच्चों के भीख माँगने की नौबत न आ जाये।"

माँ की पीड़ा-भरी बात सुनकर बापू उत्साह के साथ बोले, "कैसी

हारी हुई बातें कर रही है पगली ! मेरे बच्चे क्या कभी भीख माँग सकते हैं ? मैं और तू रहें या न रहें, परन्तु ये भीख नहीं माँगेंगे कभी। ये परिश्रम करके अपना पेट भर सकते हैं।"

माँ के कलेजे में सन्तोष हुआ बापू की बात सुनकर। इस बात का उन्हें भी अपने मन में विश्वास था कि उनके बच्चे मेहनती और होनहार हैं।

माँ और बापू ने स्नेह-भरी दृष्टि से हमारी ओर देखा। मैं चूल्हे पर खाना बना रही थी और मानसिंह तथा रिसालसिंह मेरे पास बैठे थे।

माँ की रीढ की हड्डी में एक फोड़ा हो गया था। यह फोड़ा धीरे-धीरे रिसता था और इसीलिए उनकी जीवन-नौका भी उस नौका के समान हो गई थी जिसकी तली में कोई छेद हो गया हो और उसके अन्दर से पानी नाव में बराबर भरता जा रहा हो।

छः वर्ष तक यह बीमारी चली। बापू ने अपनी शक्ति से बाहर जाकर भी उसका उपचार किया। माँ की सब चीज़ें बेचकर उनकी बीमारी के इलाज में लगा दीं, परन्तु सब व्यर्थ रहा, कोई परिणाम न निकला। रोग घट न सका, बराबर बढ़ता ही गया।

एक दिन जब बापू उनकी चम्पाकली बेचने के लिए चले तो उन्होंने बापू का हाथ पकड़ लिया। वह बोलीं, "रोज़ तुम मुझे पगली कहा करते हो, आज मैं तुम से कह रही हूँ कि क्यों पागल बन रहे हो ? सब चीज़ें तुमने बेच डालीं। बसन्ती का ब्याह नहीं करना है क्या ? मानसिंह और रिसालसिंह की बहुओं को क्या चढ़ाओगे ? यह सब कुछ इस मरी मिट्टी पर ही चढ़ा कर दम लोगे क्या ? दवाओं से अब यह गला-सड़ा शरीर स्वस्थ नहीं हो सकता।

यह शरीर अब खड़ा नहीं हो सकता बसन्ती के बापू ! मेरी इच्छा है कि तुम मेरी आँखों के सामने मेरी चमेली के हाथ पीले कर दो तो मेरी आत्मा को बड़ी शान्ति मिले।"

माँ की दर्द-भरी बात सुनकर बापू का मन भारी हो आया। वह माँ को कितना प्यार करते थे यह उनके अतिरिक्त अन्य कोई नहीं जान सकता था। वह चाहते थे कि अपना सर्वस्व स्वाहा करके भी यदि वह एक बार माँ को स्वस्थ देख सकें तो वह उसके लिए सहर्ष उद्यत थे।

माँ उन्हें अपने प्राणों से भी अधिक प्यारी थी। उनके हृदय की धड़कनों के साथ उन्होंने अपने हृदय की धड़कनें मिलाई थीं, उनके श्वाँसों और निश्वासों के साथ उन्होंने अपने श्वाँस और निश्वाँस मिलाये थे। उनकी आशा और निराशा के साथ उन्होंने अपनी आशा और निराशा का गठबन्धन किया था, उनके स्वप्नों का अपने स्वप्नों में एकाकार किया था, उनकी उमंगें बापू की उमंगों की गोद में खेली थीं।

बापू ने एक लम्बा श्वाँस लिया और प्रेम-पूर्ण दृष्टि से माँ के चेहरे पर देख कर बोले, "बसन्ती की माँ ! तुझे बचाना मेरे हाथ की बात नहीं रही, परन्तु मैं बसन्ती का विवाह बहुत शीघ्र कर दूँगा। तेरी आँखों के सामने ही कर दूँगा, इसके लिए मुझे चाहे जो कुछ भी क्यों न करना पड़े।"

बापू उसी दिन मेरे लिए वर की खोज में निकल गये। दीनानाथ चचा को अपने साथ लिया और अपनी रिश्तेदारियों में इधर-उधर गये।

कई लड़के देखे और अन्त में एक पर उनकी दृष्टि गड़ गई। वह दर्जा चार पास था और पाँचवीं कक्षा में पढ़ रहा था।

लड़का सुन्दर था और हृष्ट पुष्ट भी। उसके नाते-रिश्तेदारों की खोज बीन की तो सौभाग्य से वह परिवार उनके किसी पुराने सम्बन्धी के रिश्तेदार का निकला। इससे सम्बन्ध और भी दृढ़ सा प्रतीत होने लगा।

लड़के के पिता से भेंट हुई। आदमी भले थे वह भी, परन्तु लड़का पढ़ा-लिखा था उनका, इस बात का गर्व था उनके दिल में। वह यूँही किसी लल्लू-पंजू की ठगाई में नहीं आ सकते थे। लड़के का रिश्ता बहुत सोच समझ कर, ठोक-बजा कर, लेना चाहते थे।

उन्होंने चचा दीनानाथ को पृथक ले जाकर शादी की सब बातें पक्की कर लीं। उनकी बातें सुनकर पहले तो चचा दीनानाथ तनिक घबराये, परन्तु फिर दिल को दृढ़ करके उन्होंने सब बातों की हाँ भर दी। लड़का उन्हें पसंद आ गया था।

चचा दीनानाथ ने रास्ते में सब बातें बापू से कहीं तो उन्हें सुन कर बापू को पसीना आ गया। वह बोले, "दीना ! तूने ग़जब कर दिया। मेरे घर की दशा का क्या तुझे पता नहीं है ? दो साल से तेरी भाभी की बीमारी में मैं बिलकुल लुटा बैठा हूँ।"

बापू के आगे बढ़ते हुए कदम रुक गये। वह पास के एक कुए की मन पर माथा पकड़ कर बैठ गए।

उनकी ऐसी दशा देख कर चचा दीनानाथ साहस के साथ बोले, "भय्या जैराम ! मैंने सब कुछ समझ-बूझ कर ही किया है। तू चिंता न कर किसी बात की। बसंती की शादी मैं करूँगा।

तेरे एहसानों को मैं भूला नहीं हूँ भय्या ! एक-एक घटना और एक-एक बात मेरे कलेजे पर खुदी हुई है।

जब बापू मरे थे तो कफ़न के पैसे भी मेरे हाथ में नहीं थे। तू न होता तो कैसे उठती बापू की अर्थी ?

बहन की शादी की थी, तो अनाज की कोठी खोल दी थी तूने। क्या मैं भूल गया उन सब बातों को ? यह दुनियाँ तो यूँही अदलती-बदलती रहती है। समय निकल जाता है और बात रह जाती है।

बसंती के लिए यह लड़का मुझे बहुत जचा। इसी लिए मैंने, जो कुछ भी उसके बाप ने कहा, स्वीकार कर लिया।"

चचा दीनानाथ की बात सुनकर बापू को तनिक तसल्ली हुई। उन्होंने कृतज्ञतापूर्ण दृष्टि से उनके चेहरे पर देखा और गम्भीरता पूर्वक बोले, "दीना ! मैंने जो कुछ किया, वह क्या इस लिए किया था कि बदला लूँगा तुझसे ? लेकिन खैर ! जो कुछ तूने किया, वह ठीक

किया । लड़का मुझे भी पसंद है । अब इतना ही ध्यान रखना कि वे बातें सब पूरी होनी चाहिएँ । ऐसी चीज़ों में कमी रह जाने पर लड़की की ओर से उसके सास-ससुर के मन खराब हो जाते हैं । भविष्य में इसका परिणाम अच्छा नहीं निकलता । बातें छोटी-छोटी ही होती हैं, परन्तु इनका बच्चों के आगामी जीवन पर प्रभाव पड़ता है ।

चचा दीनानाथ हिम्मत के साथ बोले, "तुम एक ओर बैठे देखते रहना भय्या! बसंती की शादी ऐसे ठाट की करूँगा कि सारा गाँव देखता रह जाए और यह चौधरी साहब तो लट्टू हो जायेंगे इस रिश्ते पर । जीवन भर यही कहते रहेंगे कि रिश्ता तो बस एक यह ही रहा ।"

मेरा रिश्ता करके गाँव में लौटे और बापू ने माँ से सब बातें कहीं तो उनकी आत्मा को बहुत संतोष हुआ ।

माँ ने लड़के के विषय में पूछा, उसके घर के विषय में पूछा और जब उन्हें यह पता चला कि लड़का पढ़ा-लिखा है तो उसका मन आनंद से परिपूर्ण हो उठा ।

इस बात की रमक मेरे कानों में भी पड़ी और मैंने अपने हृदय में एक गुदगुदी सी भी अनुभव की, परन्तु तुरन्त ज्यों ही मुझे अपनी माँ का ध्यान आया तो मेरा सारा उत्साह भंग हो गया । मेरा हृदय अंदर-ही-अंदर रो उठा और मुझे लगा कि मैं अपनी बीमार माँ को इस प्रकार छोड़कर कैसे दुलहन बनकर जा सकूँगी ?

मैंने विश्वास-भरे स्वर में अपने से ही एकांत में कहा, 'नहीं, मैं अपनी बीमार माँ को छोड़कर नहीं जाऊँगी, कदापि नहीं जाऊँगी । शादी हो, या न हो, मैं अपनी माँ के ही पास रहूँगी. उस समय तक जब तक माँ का साँस चलता है और माँ के शरीर में प्राण शेष हैं ।'

मेरी यह दशा थी और माँ के आनन्द का पारावार नहीं था । उनकी आँखों के सामने मेरे हाथ पीले होने की घड़ी आ गई थी । इससे आनन्द की बात की उन्होंने स्वप्न में भी आशा नहीं की थी, कल्पना भी नहीं की थी ।

बापू और चचा दीनानाथ उसी दिन से शादी के प्रबन्ध पर जुट गये । दोनों ने अपनी पूरी शक्ति लगाकर इस शुभ कार्य को सम्पन्न किया ।

मानसिंह और रिसालसिंह भी मेरे विवाह की प्रसन्नता में फूले-फूले फिर रहे थे । बहुत खुश थे दोनों और कभी-कभी रो भी पड़ते थे, जब इन्हें इस बात का ध्यान आता था कि इनकी जीजी बसंती इनसे बिछड़ कर कहीं अन्यत्र चली जायगी ।

रिसालसिंह माँ की पट्टी से लगकर, आँखों में आँसू भर कर, उस से पूछता, "माँ ! तो क्या अब बसंती यहाँ से चली ही जायगी । यह फिर नहीं आयेगी माँ ! यह चली जायगी तो हमारा काम कौन करेगा माँ ! बापू की और हमारी रोटी कौन बनायेगा ?"

रिसालसिंह की भोली बातें सुनकर और मेरे बिछोह की पीड़ा हृदय में समेट कर माँ बोलीं, "आयेगी क्यों नहीं बेटा ! बसंती तो तीन-चार दिन में ही लौट आयेगी ।"

"यह शादी क्यों करते हैं माँ ! तुम बसंती को क्यों भेज रही हो किसी के साथ ? मैं बसंती जीजी को नहीं जाने दूँगा ।" रिसालसिंह मुँह चढ़ा कर बोला ।

मानसिंह रिसालसिंह की बातें सुनकर हँस दिया । यह इससे तनिक अधिक समझदार था ।

माँ बोलीं, "शादी तो सभी की होती है बेटा ! तेरी भी तो शादी करूँगी मैं । तू भी तो एक छोटी सी बहू लायेगा । मानसिंह की भी बहू आयेगी । फिर वे दोनों काम करेंगी मेरा और वे ही तुम्हारी रोटियाँ बनायेंगी ।"

रिसालसिंह की समझ में यह सब-कुछ नहीं आया । यह रोकर बोला, "नहीं माँ ! मैं बसंती जीजी को नहीं जाने दूँगा कहीं भी । मैं देखूँगा कि कोई कैसे ले जाता है मेरी जीजी को ।"

माँ मुस्करा कर बोलीं, "अच्छा न जाने देना तू। अपने जीजा जी से कह देना कि वह तेरी बसंती जीजी को न ले जायें।"

जीजा जी की बात रिसालसिंह की और भी कुछ समझ में न आई। जीजा जी कौन हैं, जो आयेंगे और उसकी जीजी बसंती को ले जायेंगे। उनकी आखिर बसंती क्या लगती है ?

समय बीतने में देर नहीं लगी। मेरी शादी का शुभ मुहूर्त आ गया। मैं विदा हो गई।

मानसिंह और रिसालसिंह दोनों रोते रह गये। खूब दहाड़ें मार-मार कर रोये दोनों। ये अनाथ से रह गये आज।

बापू बड़ी कठिनाई से इन्हें मेरे रथ के पास से अपने साथ ले गये। दोनों की आँखें सूज रही थीं रोते-रोते।

मैं भी रोते-रोते बावली-सी हो गई थी। मैं ने दो दिन से खाना नहीं खाया था। अपने छोटे भव्यों की ममता मेरे हृदय की दशा को मथे डाल रही थी। अपनी माँ की असहाय दशा मेरे दिल में बेचैनी पैदा कर रही थी। मैं रोकने का प्रयास करने पर भी अपने नेत्रों के जल-प्रवाह को नहीं रोक पा रही थी। मैं बार-बार अपने हृदय को धैर्य बँधाने का प्रयास करती थी, परन्तु हृदय फिर-फिर विचलित सा हो उठता था, आँखें बरस पड़ती थीं।

मेरी शादी हर प्रकार से सन्तोषजनक रही। लड़के के पिता ने चाहे रिश्ता लेते समय दीनानाथ चचा को हज़ार चीज़ें गिनाई थीं, परन्तु शादी के समय उनका व्यवहार बहुत अच्छा रहा।

उन्होंने अपनी ओर से कोई प्रश्न नहीं किया और वैसे उनके प्रश्न करने की गुंजाइश भी बापू और चचा दीनानाथ ने नहीं छोड़ी थी। जो कुछ उन्होंने चाहा था, वह सभी इन्होंने पूरा किया था।

मुझे विदा करते समय बापू ने आँखों में आँसू भर कर उनसे केवल इतना ही कहा, "चौधरी जी ! कोई कमी रह गई हो तो क्षमा करना।

लेने-देने के काम औरतों के होते हैं। बसंती का यह दुर्भाग्य है कि इस की माँ कई वर्ष से बीमार है और खाट से नहीं उठ सकती। इसलिए हो सकता है कि किसी चीज़ में कमी रह गई हो, सो चौधरन जी से हमारी ओर से क्षमा-याचना कर देना कि कोई कमी रह गई हो तो उस पर ध्यान न दें।

और दूसरी बात यह है कि बसंती को जल्दी ही कर जाना, क्योंकि अपनी माँ की देखभाल यही करती है। बसंती को आप चीज़-बस्त अधिक चढ़ाएँ या कम, इससे हमारा कोई सम्बन्ध नहीं है, जो चढ़ायेंगे सो आपके घर की बात है।"

बापू की बात सुनकर मेरे ससुर हाथ जोड़ कर बोले, "आपने करने में कोई कमी नहीं छोड़ी चौधरी जैरामसिंह जी ! इस शादी में आपने हमारी तबियत खुश कर दी। मैं आपको विश्वास दिलाता हूँ कि चौधरन को हर चीज़ बहुत पसंद आयेगी।

बहू को हम चौथे दिन यहाँ पहुँचा जायेंगे।"

मुझ को विदा करके बापू घर लौटे तो उनकी तबियत कुछ गिर रही थी। कुछ जाड़ा सा लग रहा था उन्हें।

घर आकर उन्होंने लिहाफ़ ओढ़ लिया और लिहाफ़ ओढ़े-ही-ओढ़े माँ के पास दूसरी खाट खींच कर उस पर बैठ गये।

माँ ने पूछा, "लिहाफ़ क्यों ओढ़ लिया तुमने ?"

वह बोले, "कुछ जाड़ा सा लगने लगा बसंती की माँ ! बसंती के चले जाने से घर उजड़ा-उजड़ा सा लग रहा है। ऐसा मालूम देता है कि घर में कुछ रहा ही नहीं।"

बापू की बात सुनकर माँ का भी जी भारी हो गया। वैसे वह बहुत प्रसन्न थीं इस समय क्योंकि इस खुशी ने कि वह मेरा विवाह अपनी आँखों से देख सकीं, उसके रुँए-रुँए को खिला दिया था। वह बोलीं, "बसंती चली गई तो लग रहा है जैसे मेरे नेत्रों का प्रकाश ही

जाता रहा बसंती के बापू ! वह सामने रहती थी तो लगता था कि मानो घर भर में उजाला है। अब मुझे कुछ सूझ ही नहीं रहा।"

बापू लम्बी साँस खींच कर बोले, "बसंती की माँ ! बस लाज रखदी भगवान् ने और भला हो बेचारे दीना का कि जिसकी बदौलत यह कार्य सम्पन्न हुआ।"

माँ कृतज्ञतापूर्ण स्वर में बोलीं, "इसमें कोई संदेह नहीं बसंती के बापू ! दीनानाथ जैसा आदमी मिलना कठिन है। ऐसा बेलाग आदमी हमारे गाँव में दूसरा नहीं है। दिनमें दिया लेकर भी खोजोगे तो ऐसा आदमी नहीं मिलेगा।

इतने पुराने-पुराने एहसानों का ध्यान है उसे। इतना कौन ध्यान रखता है दुनियाँ में ? लोग आज करो और कल भूल जाते हैं। कर्ज़ लेकर मुकर जाते हैं।"

"तुम सच कह रही हो बसंती की माँ !"

ये बातें चल ही रही थीं कि तभी मानसिंह ने रोते हुए रिसालसिंह के साथ घर में प्रवेश किया।

"क्या बात है रे मानसिंह ?" बापू ने पूछा। मानसिंह बोला, "बड़ी मुश्किल से लाया हूँ इसे बापू ! वरना यह तो बसंती जीजी के रथ के पीछे-पीछे दौड़ लिया था और उधर बसंती ने भी रथ रुकवा लिया था। मौसा जी साथ-साथ घोड़ी पर थे, वह भी रुक गये। उन्होंने घोड़ी से उतर कर इसे प्यार से गोद में उठा लिया।

वह इससे बोले, "चल तू भी हमारे साथ चल रिसालसिंह !"

यह चलने को राज़ी नहीं हुआ और अकड़ कर बोला, 'मैं बसंती जीजी को तुम्हें नहीं ले जाने दूँगा।"

इसके क्रोधपूर्ण मुख को देखकर उन्हें बहुत हँसी आई। उन्होंने इसे फिर प्यार से गोद में उठाना चाहा, परन्तु यह मचल कर नीचे उतर पड़ा और दौड़ कर रथ में जा चढ़ा।

बसंती जीजी से बोला, "चलो बसंती जीजी ! उतरो यहाँ से। मैं तुम्हें कहीं नहीं जाने दूँगा।"

बड़ी कठिनाई से मैं इसे रथ में से उतार कर अपने साथ लाया हूँ। पगला कहीं का। बहुत रोया बसंती-बसंती कह कर।"

रिसालसिंह के नेत्र रोते-रोते लाल हो गए थे। यह सीधा जाकर अपनी माँ के पास रजाई में मुँह छिपा कर सुबिकयाँ लेने लगा।

बहुत देर में सब ने मिलकर इसका रोना बन्द कराया।

: ५ :

मेरे पास से रिसालसिंह को मानसिंह ने पकड़ कर पीछे हटा लिया और रथवान ने रथ आगे हाँक दिया तो मेरी हिड़कियाँ बँध गईं। मैं रोती-रोती पागल हो उठी और अन्त में अपना मुँह अपनी ओढ़नी में छिपा कर एक ओर को ढुलक गई।

गाँव से पाँच मील चल कर, एक प्याऊ के पास, बारात के पौहन रुके तो मेरे कानों में एक मीठी सी आवाज़ आई, "भाभी पानी लाऊँ तुम्हारे लिए।"

मैं रोती-रोती उठ बैठी। मेरी ओढ़नी आँसुओं में तर-ब-तर हो रही थी। मैं घबरा सी रही थी कुछ।

मेरे नेत्र उस लड़के पर जाकर टिके जो रथ के पर्दे में से झाँक कर पूछ रहा था, 'भाभी ! पानी लाऊँ तुम्हारे लिए।'

मैंने उसकी ओर देखा तो उसने फिर कहा, "भाभी ! बापू ने भेजा है मुझे। पानी लाऊँ तुम्हारे लिए।"

मुझे उसका मुँह बहुत प्यारा लगा। उसकी आयु रिसालसिंह के ही बराबर थी। मैं धीरे से बोली, "पानी नहीं चाहिए मुझे, पर तू मेरे पास आजा।"

लड़के का मन खिल गया मेरी यह बात सुनकर और वह बोला, "मैं अभी आया भाभी ! बापू से कह आऊँ।"

लड़का प्याऊ के पास घोड़ी से उतरे हुए निकट ही खड़े अपने बापू के पास दौड़ गया और उनसे बोला, "बापू ! प्यास नहीं है भाभी को।" फिर तनिक ठिठक कर बोला, "बापू ! मैं भाभी के रथ में बैठ जाऊँ।"

चौधरी जी उसकी बात सुनकर मुस्कराते हुए बोले, "तेरा जी कर-रहा है भाभी के पास बैठने को ?"

वह अपनी गर्दन ऊपर-नीचे को हिलाकर बोला "हाँ बापू !"

"तुझे अच्छी लगीं अपनी भाभी।" उन्होंने पूछा।

"बहुत अच्छी हैं भाभी बापू !, पर रो बहुत रही हैं। मुझे भी रोना आ गया उनकी सूरत देखकर। वह रो क्यों रही हैं बापू ?" मनोहर ने सरल-स्वभाव से पूछा।

चौधरी जी उसकी भोली बात सुनकर मुस्करा दिये। फिर बोले, "तू चुप कर ले जाकर उसे। अपने माँ-बाप और भाई-बहनों को छोड़ते सभी को दुःख होता है बेटा !"

"मैं भाभी को नहीं रोने दूँगा बापू ! मैं जाता हूँ उनके पास।" कहकर वह दौड़ा हुआ रथ के पास आ गया और रथ के बाँक पर पैर रखकर गद्द से रथ के पर्दे के अन्दर घुस कर बोला, "मैं आ गया भाभी !"

मैंने उसे प्यार से अपने पास में बिठला लिया। उसे देखकर मुझे लगा कि मानो रिसालसिंह भय्या मेरे पास आ बैठा।

मेरा रोना अभी बन्द नहीं हुआ था और मेरी आँखों से मोटे-मोटे आँसू टपक कर गिर रहे थे।

वह मेरे मुँह की ओर देखकर रुँआसी सी सूरत से बोला, "भाभी! तुम रोओ नहीं ! तुम रोओगी तो मैं भी रोने लगूँगा। तुम्हें रोती देखकर जाने क्यों मेरी आँखों में भी आँसू आने लगते हैं।"

मैंने उसे प्यार से अपनी और निकट को करके गोद में बिठला लिया और आँखें बन्द कर लीं। मैं इसी प्रकार कुछ देर बैठी रही और वह मेरी गोद में बैठा रहा।

उसे मेरी गोद में बैठकर उतना ही आनन्द आ रहा था जितना उसे अपनी माँ की गोद में बैठकर आता था। और मैं भी कुछ क्षण के लिए भूल ही गई कि मेरी गोद में कौन बैठा है।

मैं धीरे से बोली, "रिसालसिंह !"

"रिसालसिंह नहीं भाभी ! मैं हूँ मनोहर हूँ। वह तो बहुत दूर रह गया।" वह बोला।

यह सुनकर जैसे मेरा स्वप्न सा टूट गया। एक झटका सा लगा मेरे हृदय पर, परन्तु अपने को सम्भाल कर मैं फिर धीरे से बोली, "मनोहर भय्या !"

"हाँ भाभी ! तुम मुझे रिसालसिंह कह गई।" मनोहर मुस्करा कर बोला।

मैं बोली, "हाँ भय्या ! रिसालसिंह का नाम रटा हुआ है न मेरी ज़बान पर, सो वही निकल गया।"

मनोहर सरल-स्वभाव से बोला, "तुम रिसालसिंह को खिलाती थीं नाँ ! इसीसे तुम्हें उसका नाम याद है। अब मुझे खिलाओगी, तो मेरा नाम भी रट जायेगा।"

मनोहर की भोली बात सुनकर मेरे हृदय में एक गुदगुदी सी पैदा हुई और मेरा मन मनोहर के कुछ और निकट को खिंच आया। मैंने उसे स्नेह से अपनी अंक में भर लिया और एक हल्की सी थपकी उसके गाल पर लगाकर बोली, "रट क्यों नहीं जाएगा मनोहर भय्या ! अब तू ही तो मेरा सब काम करेगा और मैं तेरा काम किया करूँगी।"

मेरी बात सुनकर मनोहर का हृदय गुलाब-सा खिल उठा। उसे मैं बहुत अच्छी लग रही थी। वह टकटकी लगाये मेरे मुख को निहार रहा था।

मेरा रथ सब पौहनों के बीच में था। बारात आगे बढ़ रही थी।

बैलों के गलों में बँधी टल्ली मधुर राग अलाप रही थीं। रथों के नीचे जंग अपना स्वर सुना रहे थे।

मैं दुलहन बनी जा रही थी।

अनायास ही मेरे हृदय में एक हलकी सी उमंग की रेखा खिंच गई। मेरे जीवन का विकास मुस्करा उठा। एक नये जीवन का सुनहला स्वप्न मेरे नेत्रों की पुतलियों में उभर आया और उसने आँसुओं को धीरे-धीरे सोखना प्रारम्भ कर दिया।

मनोहर भोलेपन में बोला, "भाभी ! तुम अब हमारे घर से आना नहीं। मैं तुम्हारे लिए अपने बाग से मीठे-मीठे अमरूद लाकर दूँगा तुम्हें। भाभी तोते के कुतरे हुए अमरूद बहुत मीठे होते हैं। मैं उन्हीं को खाता हूँ।"

मनोहर की बात सुनकर मेरा भारी मन और भी हलका हो गया। मैं उसकी सरल बात पर मुस्करा उठी। मैंने प्यार से पूछा, "तुम्हारे बाग में क्या-क्या फल हैं मनोहर ?"

मनोहर बोला, "अमरूद, आम, केला और जामुन, बस चार ही चीजें हैं भाभी ! पर अमरूद बहुत अच्छे लगते हैं मुझे। मैं उनकी नमक-मिर्च की चाट बनाकर खिलाऊँगा तुम्हें।"

मनोहर की मीठी-मीठी और भोली-भोली बातों में मैं कुछ ऐसी खो गई कि मेरे हृदय की व्यापक पीड़ा उसके नीचे दब सी गई।

बारात संध्या को मेरी ससुराल में पहुँची। पूरे गाजे-बाजे के साथ मुझे रथ में से उतारा गया। मेरा हृदय भी उस समय उल्लास से परिपूर्ण हो उठा।

बहुत सी गीत गाती हुई स्त्रियों के बीच मैंने ग्रह-प्रवेश किया। आगे-आगे मेरे पति थे और पीछे-पीछे मैं। मेरी ओढ़नी का छोर उनके गले में पड़े दुपट्टे के छोर से बँधा था।

मनोहर मेरे साथ-साथ चल रहा था।

मेरी सास ने मुझे देखा तो उनका हृदय आनंद से परिपूर्ण हो उठा। वह अपने बेटे की बहूँ के सौंदर्य के विषय में जो कल्पना कर रही थीं, मेरी शक्ल देखकर वह साकार हो उठी।

गाँव की जिस-जिस स्त्री ने भी मेरा मूँह देखा, उसी ने प्रशंसा करते हुए मेरी सास से कहा, "दयाराम की माँ ! बहू क्या है गुलाब का फूल उठाकर दे-दिया है तुझे नेटी वाले ने। ऐसी सुन्दर बहू हमारे गाँव में एक भी नहीं आई।"

गाँव की औरतो के मुख से मेरे रूप की प्रशंसा सुनकर मेरी सास फूली नहीं समा रही थीं। उनका हर पैर बड़े चाव से उठ रहा था।

मुझे अपनी ससुराल में आये दो दिन ही हुए थे कि हमारा नाई आ पहुँचा। मैं समझी कि माँ ने लाड-कोथली भेजी है मेरे लिए, परन्तु वह खाली हाथ था। मैं समझ नहीं सकी कुछ भी।

तभी मेरे ससुर ने घर में प्रवेश किया और उन्होंने मेरी सास के कान में उन्हें अलग ले जाकर कुछ कहा।

मैं फिर भी कुछ न समझ सकी, परन्तु मैंने देखा कि मेरे ससुर कुछ तैय्यारी सी कर रहे थे कहीं जाने की।

मुझसे किसी ने कुछ नहीं कहा, पर मेरा दिल ज़ोर-ज़ोर से धड़कने लगा। मैं घबरा सी गई कुछ।

मेरी सास ने तभी मुझसे कहा, "बहू हमने आज ही तेरे पीहर लौटाने का प्रबन्ध कर दिया है। कल और परसों के दिन पंडित जी ने अच्छे नहीं बतलाये तुम्हारे जाने के लिए।"

मैं प्रसन्न हो गई यह सुनकर और तुरन्त तय्यार हो गई।

तभी ताँगा घर के बाहर आ गया।

मनोहर रोकर बोला, "भाभी जा रही हो तुम ! मैं तो तुम्हारे लिए बाग से अमरूद लाया था।" और सचमुच वह अपने कुर्ते की झोद में तोता-कुतरे अमरूद लिए खड़ा था।

मैंने प्यार से उसे अपनी गोद में उठा लिया और बोली, "मैं बहुत जल्द लौट आऊँगी मनोहर ! तू भूलना नहीं मुझे।"

परन्तु मैंने देखा कि मनोहर का रोना नहीं रुक सका। मेरी सास ने उसे अपनी गोद में उठा लिया और बोलीं, "तेरी भाभी अभी लौट आयेगी मनोहर ! यह तो अब हमारी ही हो गई है।"

"तो फिर जा क्यों रही हैं ?" उसने रोकर पूछा।

"इसकी माँ ने याद किया है बेटा ! वह बीमार हैं।" कहते हुए उनकी आँखों में आँसू भर आये।

मैंने उनकी आँखों में आँसू देखे तो मेरा दिल और भी घबरा उठा। मैं भयभीत सी हो उठी।

मैं ताँगे में जाकर बैठ गई और बहलवान ने ताँगा हाँक दिया। मेरे ससुर ताँगे के साथ-साथ घोड़ी पर चढ़े चल रहे थे।

ताँगा बहुत तेज़ी के साथ चल रहा था। बैलों की जोड़ी बहुत अच्छी थी, जो बहलवान के टाँट पर हाथ रखते ही तीर हो जाती थी।

हमारा गाँव यहाँ से दस कोस था। सन्ध्या के झुटपुटे तक हम गाँव में पहुँचे और ताँगा हमारे घर के सामने जाकर रुक गया।

ताँगा रुका तो मानसिंह और रिसालसिंह दौड़ कर बाहर आ गये। इन्हें देखकर मेरे दिल को तनिक धीरज बँधा, परन्तु इन दोनों की आँखें आँसुओं से भीगी हुई थीं।

मैंने धीरे से पूछा, "क्या बात है रे मानसिंह !"

वह रोता हुआ बोला, "माँ··· ···" और आगे कुछ कह न सका। उसकी ज़बान रुक गई।

मैं हड़बड़ाई सी घर में घुस गई। बापू माँ की खटिया के पास ही बैठे थे। हकीम जी भी पास में ही खड़े थे और चमेली भी वहीं खड़ी थी। चचा दीनानाथ एक ओर रुँआसे से खड़े थे।

माँ अचेत पड़ी थीं।

मैं धीरज धर कर माँ की खाट के पास जाकर धीरे से बोली, "माँ ! मैं आ गई। अब मैं तुझे छोड़कर कहीं नहीं जाऊँगी माँ !"

मेरे शब्द सुनकर माँ ने आँखें खोल दीं। मैं उतावले पन में बोली, "माँ मैं आ गई।"

माँ ने डबडबाये नेत्रों से मेरी ओर देखा परन्तु बोल न सकीं वह। बापू ने माँ के मुँह में गंगाजल डाला तो उनका हलक तनिक तर हुआ।

"तू आ गई बसंती ! मेरे प्राण तुझ में ही अटके हुए थे। मैं अब जा रही हूं बेटी ! भगवान् का बुलावा आ गया। रिसाल और मानसिंह की अब तू ही माँ है।" इतना कहकर माँ की आँखें बन्द हो गईं।

मेरी चीख निकल पड़ी, "माँ····· ·····।"

अब माँ नहीं थी। उनका शव था, जिसे बापू और चचा दीनानाथ ने ज़मीन पर उतार लिया।

रिसालसिंह और मानसिंह दहाड़ें मार-मार कर रोने लगे। उन्हें देखकर मैंने अपने दिल में उठने वाले बवंडर को दबा लिया और आगे बढ़कर उन्हें छाती से लगाकर बोली, "रोओ नहीं भय्या ! तुम्हारी माँ तो मैं ही हूँ। तुम्हें पाल-पोस कर इतना बड़ा मैंने ही तो किया है।"

माँ चली गई। मैंने रिसालसिंह और मानसिंह को छाती से लगा लिया। पता नहीं बेटा ! उस दिन भगवान् ने मुझे इतना साहस कहाँ से दिया कि मैं रोई नहीं तनिक भी।

चमेली मानसिंह और रिसालसिंह को अपने घर ले गई।

मैंने घर में जाकर देखा कि बापू बेहोश पड़े थे। चचा दीनानाथ उनके पास बैठे थे और हकीम जी नब्ज़ देख रहे थे।

बापू की यह दशा देखकर मेरे पैर उखड़ गए। मैं घबरा सी गई। मुझे लगा कि मेरा पीहर अब बर्बाद हुआ।

परन्तु परमात्मा इतना निर्दय नहीं हुआ उस दिन। बापू सचेत हो गये। उन्होंने आँखें खोल दीं।

मेरे ससुर पाँच दिन तक यहीं ठहरे रहे और जब बापू की दशा कुछ ठीक हो गई, तब लौटे।

चलते समय वह दालान में बापू के पास बैठकर बोले, "चौधरी ! धीरज से काम लो। इन बच्चों को अब तुम्हारा ही सहारा है। कोई चिन्ता न करना किसी बात की। मैं तुमसे किसी भी बात में बाहर नहीं हूँ।"

बापू की आँखों में आँसू आ गये उनकी बात सुनकर। बापू बोले, "चौधरी जी ! मेरा दिल टूट गया। यूँ वह पाँच-पाँच वर्ष से बराबर खाट में ही पड़ी रहती थी, परन्तु उसके रहते मैं समझता था कि घर खाली नहीं है, भरा हुआ है। परन्तु आज लग रहा है कि इसमें कुछ रहा ही नहीं।"

मेरे ससुर का जी भी भारी हो गया उनकी बात सुनकर। वह बोले, "तुम ठीक कह रहे हो चौधरी ! वह इस घर की लक्ष्मी थीं। उनके चले जाने से घर उजड़ तो गया ही, परन्तु फिर भी तुम्हें साहस से काम लेना चाहिए। अब तुम्हें अपने लिए नहीं, इन बच्चों के लिए जीना है। तुम्हारे त्याग का जीवन तो अभी प्रारम्भ होता है।"

मेरे ससुर मुझसे बोले, "बेटी ! अपने बापू का ध्यान रखना। इनका स्वास्थ्य मैं देख रहा हूँ कि ठीक नहीं है। इन्हें धीरज बँधाना।"

मैंने रोते-रोते उनके शब्द सुने।

वह चले गये।

बापू को सँभालने का मैंने लाख प्रयत्न किया बेटा ! परन्तु वह सँभल न सके। उनका शरीर बराबर गिरता ही गया। उनके स्वास्थ्य की दशा बराबर बिगड़ती ही गई और एक वर्ष के अन्दर-ही-अन्दर वह भी चलते बने।

हमारे घर की दशा एक दम खराब हो गई। कुछ कर्ज, जो मेरी शादी में बापू ने कर लिया था, वह पर्वत के समान हमारी छाती पर धरा गया।

एक दिन मैं रो पड़ी घर के कोने में अकेली बैठी-बैठी। मैं ने अपने मन में कहा, 'बापू ! तूने मेरी शादी क्यों की ? मेरी शादी न करते तो क्या मैं आजीवन अविवाहित नहीं रह सकती थी ? यदि अविवाहित ही रहती तो मेरा मन दो ओर तो न बँटता।'

लेकिन भय्या ! तुम्हारे जीजा जी बड़े ही देवता आदमी हैं। उनका पीठ पीछा है कि उन्होंने मुझे जीवन में कभी कोई कष्ट नहीं होने दिया और सच यह है कि यदि उनका सहारा न मिलता तो यह घर बर्बाद ही हो गया था।

मैं सात वर्ष तक बराबर यहीं रही। तब तक मानसिंह और रिसालसिंह ने अपनी खेती-बाड़ी का काम सँभाल लिया।

इस बीच में मैं स्वयँ खेत पर जाती थी और भय्या मानसिंह और रिसालसिंह के साथ खेतों पर काम करती थी। मैंने इस घर की खेती को उजड़ने नही दिया।

इस बीच में मैं अपनी ससुराल भी गई तो केवल दस-बीस दिन के लिए। इससे अधिक मैं अपनी ससुराल में कभी नहीं ठहरी।

बापू और माँ के मर जाने से इस घर की हवा खराब तो हो ही गई थी। फिर उस कर्ज को अभी तक हम समाप्त नहीं कर सके थे जो मेरी शादी में सिर पर चढ़ गया था। उसकी चिंता मुझे खाये डालती थी।

चचा दीनानाथ मुँह से तो कभी कुछ नहीं कहते थे, परन्तु कभी-कभी जब चाची जी उन्हें बहुत परेशान करती थीं तो वह मुँह लटका कर मेरे पास आ बैठते थे।

उनकी सूरत देखकर मैं समझ जाती थी कि वह किस लिए आये हैं। उन्होंने उस समय जोश में आकर अपनी पत्नी की कुछ चीजें किसी

सुनार के पास गिरवीं रख दी थीं। वह सुनार अब उन्हें बहुत तंग कर रहा था।

आज मैं इसी चिंता में बैठी थी कि तुम्हारे जीजा जी आ गये। घर में मैं अकेले ही थी।

उन्होंने मेरी चिंतित मुखाकृति देखी तो बोले, "बसंती ! क्या बात है ?"

मैं बोली नहीं कुछ।

वह बोले, "बसंती ! तू मुझ से भी अपने मन की बात छिपाती है, यह अच्छी बात नहीं है।"

उस दिन मैं छिपा नहीं सकी उनसे। मैंने सब बातें बतला दीं तो वह मुस्करा कर बोले, "पगली ! तूने पहले से क्यों नहीं बतलाई यह बात ? मैं कल आऊँगा और ये रुपये तू कल ही दीनानाथ चाचा जी को दे-देना।"

इतना कह कर वह तुरन्त खड़े हो गये।

मैंने कहा, "आप चल कहाँ दिये ?"

"मैं जा रहा हूँ इस समय। कल लौटना भी तो है।" वह मुस्करा कर बोले।

"परन्तु ऐसी भी क्या जल्दी है ?" मैं बोली।

"ये रुपये देने की चिन्ता तेरे तन-बदन में घुन के समान लग रही है। इन्हीं की चिन्ता ने तुझे इतना दुर्बल बना दिया है।" कहकर वह घर से बाहर हो गये और मैं चुपचाप खड़ी रह गई।

उनके जाने के थोड़ी देर बाद ही मानसिंह आया और इसने पूछा, "बसन्ती जीजी ! जीजा जी आये थे ?"

मैं मुस्कराकर बोली, "आये तो थे भय्या !"

"तो फिर कहाँ चले गये ? मुझसे अभी-अभी खेत पर चचा दीनानाथ ने कहा था। मैं तभी हल छोड़ कर इधर आया और घर में देखा, तो वह मुझे वहाँ नहीं मिले।" मानसिंह बोला।

मैं बोली, "वह आये भी थे और चले भी गये।"

"कहाँ ?"

मैं हँस पड़ी और मानसिंह को अपनी कौली में भर कर बोली "भय्या, बड़े देवता आदमी हैं।"

मानसिंह कुछ भी न समझ सका। सकपकाया सा मेरे मुँह को देखने लगा।

मैं बोली, "वह कल आयेंगे।"

मानसिंह बोला, "ऐसी क्या जल्दी थी लौट जाने की ? कल चले जाते। मैं तो मिल भी नहीं सका उनसे।"

"तुम कल मिल लेना। अबकी बार कई दिन रोक लेना उन्हें। तुम्हारा कहना वह टालते कब हैं ?" मैंने मुस्करा कर कहा।

तभी मैंने देखा कि रिसालसिंह भी लपका चला आ रहा था। मेरे पास आकर इसने भी वही प्रश्न किया जो मानसिंह ने किया था। यह भी आश्चर्यचकित रह गया उनके चले जाने की बात सुनकर।

संध्या हो गई थी। दोनों भय्या पास-पास खाट पर बैठ गये और मैंने चूल्हे में आग जला दी।

आग जल गई तो मैंने मेथी का साग पतीली में डालकर चूल्हे पर रख दिया।

मानसिंह बोला, "जीजी ! आज एक बात पूछूँ तुम से ?"

"पूछो भय्या !" मैंने कहा।

"आज दीनानाथ चाचा जी ने मुझ से कहा था कि उनका कुछ रुपया हमें देना है। क्या सच है यह बात ?" मानसिंह गम्भीरता-पूर्वक बोला।

मैंने चचा दीनानाथ से रुपये का मानसिंह और रिसालसिंह से ज़िक्र करने के लिए मना किया हुआ था। परन्तु आज परेशानी में आकर वह अपने को न रोक सके। शायद उन्होंने यही समझ लिया हो कि

मैं उनका रुपया देने में टालमटोल कर रही हूँ। परन्तु वास्तविक स्थिति यही थी कि हम लोग दे ही नहीं पाये थे। खेती की आय इतनी कम थी कि हम किसी प्रकार अपना वर्ष भर का खर्च चला पाते थे।

मैं गम्भीरतापूर्वक बोली, "हाँ भय्या ! हमें उनका रुपया देना है। मेरी शादी में यह रुपया बापू ने उनसे लिया था। तुम्हारे जीजा जी उसी का प्रबन्ध करने गये हैं। मैंने भी आज तक उनसे इसके विषय में कभी कुछ नहीं कहा था, परन्तु आज मुझे चिंतित देखकर वह स्वयँ ही पूछ बैठे और मुझ से झूठ नहीं बोला गया।"

मानसिंह और रिसालसिंह पहले भी अपने जीजा जी का बड़ा सम्मान करते थे। बापू के बराबर का ही दर्जा ये उन्हें देते थे। इस बात को सुनकर इन दोनों की आँखों में आँसू भर आये।

ये दोनों एक स्वर में बोले, "जीजी ! हम जीजा जी का रुपया बहुत जल्द अदा कर देंगे। अब हम दोनों बड़े हो गये हैं। भगवान् ने चाहा तो इसी वर्ष हमारी ईख इतनी अच्छी होगी कि हम यह रुपया उन्हें वापस लौटा देंगे।"

इनकी यह बात मेरे कानों में पड़ी तो मेरा दिल गुलाब की तरह खिल उठा। मैं बोली, "तुम चिंता न करो उसकी। सब दिया जायगा। दीनानाथ चचा भी इतना ज़ोर न देते, परन्तु उन्हें सुनार ने तंग कर रखा है। यह रुपया उन्होंने चाची की कुछ चीज़ें सुनार के पास गिरवीं रखकर दिया था। चाची उनसे रोज़ लड़ती है अपनी चीज़ों के लिए।

एक दिन वह मेरे पास भी आई थी। मैं लज्जा से गड़ गई थी उस दिन और खून का घूंट पीकर रह गई थी, परन्तु करती क्या ? रुपया होता तो उसी दिन दे-देती उसे।"

दूसरे दिन मानसिंह के जीजा जी रुपया लेकर आ गये।

मैंने तभी मानसिंह को भेजकर चचा दीनानाथ को बुलवाया और रुपये उनके हाथ में देकर कृतज्ञता पूर्वक कहा, "चचा ! आपको हमारी

खातिर बड़ा कष्ट हुआ। हम इतने दिन तक आपका रुपया अदा नहीं कर पाये इसके लिए हम बहुत लज्जित हैं।"

रुपये हाथ में लेकर चचा दीनानाथ की आँखों में आँसू आ गये। वह रुँधे कंठ से बोले, "बेटी ! मैंने बहुत चाहा कि मैं ये रुपये तुम से न माँगूँ, परन्तु भगवान् ने मुझे इस योग्य ही नहीं किया कि तुम्हारे सामने इस सवाल को न रखता। ये रुपये तुम से लेकर आज मेरी आत्मा को कितना कष्ट पहुँच रहा है यह मैं तुम से कह नहीं सकता।

मैंने मजबूर होकर यह सवाल तुम से किया। तुम्हारी चाची से मैं बहुत दिन तक झूठ बोलता रहा कि मैंने उसकी चीज़ें अपनी बहन को दे रखी हैं। परन्तु अब की बार जब बहन आईं तो तेरी चाची ने उससे जिक्र कर दिया। तब मुझे साफ-साफ बतलाना पड़ा।

मेरा तब से घर में मुँह दिखाना कठिन हो गया है। अपनी चाची की आदत को तो तू जानती ही है।

मैं मुस्करा कर बोली, "चचा ! आपका इतना ही अहसान क्या कुछ कम है कि आपने समय पर बापू का काम निकाल दिया ? बापू न मरते और हमारे घर की आर्थिक दशा इतनी न बिगड़ती तो यह रुपया कभी का आपके पास पहुँच जाता।

बापू मरते-मरते भी मुझ से यह रुपया तुम्हें लौटाने के लिए कह गये थे। आज आपका रुपया आपको देकर मुझे हार्दिक शांति प्राप्त हुई है।"

"अहसान की बात मत करो बेटी ! मुझे और अधिक शरमिन्दा न करो। ये रुपये लेकर मैं ज़मीन में गड़ा जा रहा हूँ। मैंने ये रुपये लेने के लिए नहीं दिये थे।" कहकर चचा दीनानाथ की गर्दन झुक गई।

मैं हँसकर बोली, "चचा ! इसमें मन मारी करने की क्या बात है ? मेरे मानसिंह और रिसालसिंह के दिलों में आपका जितना आदर-भाव है, उसे आप क्या जानें ? ये लेन-देन के मामले जितने साफ़ रहें, उतना ही प्रेम और बढ़ता है।"

चचा चले गये और मैं खाना बनाने में लग गई।

: ६ :

मानसिंह और रिसालसिंह अब जवान हो गये थे। इनकी जवानी को देखकर भूखों की भूख भागती थी। रिसालसिंह मानसिंह से भी कद्दावर जवान निकला। इनकी सूरत देखती थी तो बापू की आकृति इनके चेहरों में उतर आती थी। वही चौड़ा सीना, वे ही लम्बी भुजाएँ, उभरा हुआ माथा और मस्तानी चाल।

मेरे दोनों भय्यों की लहलहाती हुई खेती, गाँव भर से निराली थी बेटा! दो साल के अन्दर-ही-अन्दर इन्होंने अपने जीजा जी का रुपया अदा कर दिया।

दोपहर का समय था। मैं रोटी बना रही थी। तभी मैंने क्या देखा कि मनोहर मुस्कराता हुआ रिसालसिंह के साथ सामने से आ रहा था।

मनोहर ने घर में प्रवेश किया और बोला, "भाभी जी नमस्ते।"

मैं चूल्हे के पास से खड़ी होकर आगे बढ़ती हुई बोली, "नमस्ते लाला जी! आज कैसे अपनी भाभी की याद आ गई मेरे मनोहर को?"

मनोहर को मैं रिसालसिंह और मानसिंह के समान ही प्यार करती थी और वह भी मरा जीता था मेरे लिए।

मैं दूसरी बार जब अपनी ससुराल से यहाँ आई थी तो वह भी मेरे साथ ही यहाँ चला आया था और फिर दो वर्ष तक बराबर यहीं रहा था। उसके बचपन के वे दो वर्ष रिसालसिंह के साथ बीते थे और इसीलिए इन दोनों में भी बड़ा प्रेम हो गया था।

मनोहर के लिए मैंने यहीं चौक में खाट बिछा दी और मैं चूल्हे के निकट जा बैठी। साग की पतीली में चमचा डाल कर साग को चलाया और आटे की परात का आटा सही किया।

मैं आटा माँडती-माँडती ही बोली, "घर से ही आ रहे हो लाला जी!"

मनोहर बोला, "नहीं तो भाभी! मैं भय्या के पास से आ रहा हूँ। गाँव से चले तो पाँच दिन हो गये।"

"फिर पाँच दिन कहाँ रहा ?" मैंने पूछा।

"भय्या के पास ही रहा। आने ही नहीं दिया भय्या ने।" मनोहर बोला।

"वैसे घर पर तो सब कुशल-मंगल है। माजी और बहू याद करती होंगी मुझे। पिता जी की तबियत कैसी है अब ?" मैंने पूछा।

मनोहर बोला, "पिता जी अब ठीक हैं भाभी और माजी भी ठीक हैं। वह बहुत याद करती हैं आपको। कहती हैं कि अपने घर की भी कभी सुधि ले-लिया करो।"

"यह घर क्या तुम्हारा नहीं है लाला जी ? इस घर का कुछ ठिकाना बना दो तो मैं क्यों पड़ी रहूँ यहाँ ?" मैं मुस्करा कर बोली।

मेरी बात सुनकर मनोहर का मन खिल उठा। वह हँसकर बोला, "इस बार यही सोचकर घर से निकला हूँ भाभी ! भय्या रिसालसिंह और मानसिंह ने मेरी भाभी को ही छीन लिया है मुझ से। अब देखना है कि ये कैसे तुम्हें हथियाये रहेंगे ?"

"तो क्या झगड़ा करने आया है तू इस बार इनसे ? करले तू झगड़ा। देखें कौन जीतता है दोनों में।" मैं मुस्करा कर बोली।

मेरी बात सुनकर मनोहर खूब हँसा और फिर बोला, "कल भय्या भी आयेंगे। मानसिंह और रिसालसिंह दो हैं नाँ ! मैं अकेला कैसे लड़ सकूँगा इनसे ? इसीलिए भय्या को भी बुला आया हूँ। कल हम भी दो हो जायेंगे और ये भी दो रहेंगे। फिर होंगे दो-दो हाथ। देखिए जीत किसकी और हार किसकी होती है।"

मनोहर की बातें मेरे दिल में गुदगुदी पैदा कर रही थीं। उसके चेहरे की प्रसन्नता को देखकर मैं समझ रही थी कि अवश्य कोई विशेष बात है आज जो यह इस प्रकार की बातें बना रहा है।

मनोहर बोला, "भाभी कल भय्या ने मानसिंह की शादी का रुपया हाथ में सम्भाल लिया। पिता जी ने भेजा था वह रिश्ता भय्या के पास। भाभी ! लड़की बड़ी सुन्दर है। मैंने देखा है उसे। उसकी बड़ी बहन हमारे ही गाँव में हैं। तुमने तो देखी है न चन्दू की बहू। उसी

की छोटी बहन है। कल लड़की के पिता जी भय्या के साथ यहाँ आयेंगे। भय्या ने मुझे इसी काम के लिए पहले ही यहाँ भेज दिया है।"

मनोहर के मुँह से यह बात सुनी तो मेरे मन में मिसरी सी घुल गई। मुझे इतनी प्रसन्नता हुई कि कोई शब्द ही न आया जबान पर मनोहर की बात का उत्तर देने के लिए। मैं एक टक देखती रही उसके मुस्कराते हुए चहरे पर।

मनोहर मेरी ओर देखकर बोला, "तुम ऐसे क्यों देखने लगीं भाभी ? मैं ठीक कह रहा हूँ। भय्या और वह कल दोनों आयेंगे।"

मेरी आँखों में आँसू आ गये। मुझे याद आ रही थी बापू की। मैं अपने मन में कह रही थीं "बापू ! तुम से आज का दिन देखने के लिए भी बैठा न रहा गया। माँ, ठीक था कि बीमार थीं, परन्तु तुम तो बीमार नहीं थे। तुमने माँ का ही साथ दिया। अपने बच्चों का दिल रखने के लिए क्या तुम कुछ दिन और नहीं जी सकते थे ?

तुम कितने कमजोर दिल के आदमी थे बापू ?'

मनोहर की बात ने मेरा स्वप्न भंग कर दिया। मैं ओढने के पल्ले से अपनी आँखें पोंछ कर बोली, "लाला जी ! आज बापू होते तो कितने प्रसन्न होते यह समाचार सुनकर। तुम्हें छाती से लगा लेते।"

मैंने देखा कि मेरी बात सुनकर रिसालसिंह की आँखों में भी आँसू भर आये। वह उठकर चल दिया घर से बाहर को।

मैंने तुरन्त मनोहर से कहकर रिसालसिंह को वापस बुलवाया और गम्भीरता पूर्वक बोली, "भय्या रिसालसिंह ! इस बात को बिल्कुल गुप्त रखना। किसी को कानों-कान भी इसकी सूचना न देना। चचा दीनानाथ को भी नहीं।"

"अच्छा जीजी !" कहकर वह बाहर को चला गया। उसका मन बापू की याद आ जाने से उद्विग्न सा हो उठा था।

मनोहर बोला, " इसमें किसी से न कहने की क्या बात है भाभी ?"

मैंने कहा, "कुछ नहीं लाला जी !गाँव बहुत बुरा हो गया है अब। मानसिंह के चार-पाँच रिश्ते पहले आ चुके हैं, परन्तु गाँव वाले जमने ही नहीं देते किसी को। पता नहीं किसी की बुराई करने में लोगों को क्या आनन्द आता है। दुनियाँ कुछ विचित्र ढंग से बदल रही है। किसी की हानि होती है तो लोग मुस्कराते, हँसते और मज़ाक उड़ाते हैं; किसी का लाभ होता है तो लोग जलते हैं और हानि पहुँचाने के फ़िराक में रहते हैं।"

मनोहर गम्भीर होकर बोला, "नीच लोगों की संख्या बढ़ती जा रही है भाभी ! मानसिंह भय्या की शादी हो जाएगी तो घर की स्थिति में मज़बूती आ जाएगी। इस तरह की बातें इसलिए हैं कि परिवार के सिर पर बजुर्गों का साया नहीं रहा।"

इतना कहकर मनोहर गर्व के साथ बोला, "परन्तु यह काम पिता जी का किया हुआ है भाभी ! इस में किसी की सामर्थ नहीं कि जो तनिक भी अड़चन पैदा कर सके। तुम कहो तो मैं अभी गाँव भर में ढिंढोरा पिटवाकर एलान करादूँ और फिर देखूँ कि कौन बदमाश है वह जो हमारे काम को बिगाड़ सकता है।"

मनोहर की बात सुनकर मेरा दिल मजबूत हो गया। मैं बोली, "नहीं लाला जी ! किसी से क्या शत्रुता मोल लेनी है ? अपना काम निकालदे परमात्मा, बस यही सब कुछ है। यों मुँह पर तो भय्या मानसिंह और रिसालसिंह के भी अब किसी में बोलने की शक्ति नहीं है। सारा गाँव दहलता है इन दोनों की शक्ति के सामने।

हकीम जी की आँखें खिल उठती हैं इन दोनों को देखकर। वे सब रिश्ते बेचारे हकीम जी ने ही भिजवाये थे, परन्तु यह ननका, जो हमारे पड़ौस में रहता है, बड़ा ही कमीना आदमी है। जीवन भर हमारे ही टुकड़ों पर पला है और हमसे ही मन में इतना वैर रखता है कि कुछ पूछो नहीं।

दिल का स्याह और मुँह का इतना मीठा है कि कोई जान नहीं सकता इसे। मैं पहले इसे नहीं समझती थी, परन्तु अब समझने लगी हूँ। बूढ़ा खूसट हो गया है। चिता के अन्दर इसके पैर लटक रहे हैं,

पता नहीं कितने दिन का और मेहमान है इस दुनियाँ में, परन्तु फिर भी यह नहीं कि किसी की बुराई न करे।"

मैं खाना बनाने में लग गई। मनोहर घेर की ओर जाने के लिए घर से बाहर निकला तो ननका पड़ौस के मकान की दुआरी की चौखट पर बैठा खुल्ल-खुल्ल खाँस रहा था।

मनोहर को देखकर बोला, "अरे बेटा मनोहर आया है। अपनी भाभी की सुध लेने आया होगा ? अरे बेटा ! कहीं से हमारे मानसिंह के फेरे फिरवादो तो बेचारी बसन्ती को भी इस घर की धंध पीटने से छुट्टी मिल जाय। इस घर के काम-काजों ने तो खा लिया बेचारी बसन्ती को। यह लौंडिया तो बेचारी ब्याही-बे-ब्याही बराबर ही रह गई। आखिर क्या करे बेचारी ? यहाँ से चली जाय तो यहाँ का ढेंचरा ही बिखर जाय। यह जो कुछ भी तुम यहाँ देख रहे हो यह सब तेरी भाभी के ही दम पर है।"

मनोहर ननका के आँखें मटका कर बोलने और हाव-भावों की मुद्रा को विशेष ध्यान से देख रहा था। वह आनन्द ले रहा था उसमें, तौल रहा था उसके शब्दों के भारी पन को। कितने मीठे, नपे-तुले, सहानुभूति से भरे वे शब्द थे, परन्तु कितना ज़हर भरा था उनमें, इसे समझने में मनोहर असमर्थ रहा।

मनोहर ने ऐसी मुख-मुद्रा बनाई कि मानो उसने वह सब जो उसने कहा, सुना ही नहीं। वह बोला, "मौसा जी ! लगता है दमे के शिकार हो गये हो तुम ?"

ननका लम्बा साँस खींचकर बोला, "हाँ बेटा ! कह तो हकीम जी भी यही रहे थे। बड़ी खाँसी उठती है।"

मनोहर मुस्करा कर बोला, "इसका एक ही इलाज है मौसा जी ! और दवा भी बे पैसे की है।"

"वह क्या दवा है बेटा ?" उत्सुकता पूर्वक ननका ने पूछा।

"वह यही है बस कि भगवान् के भजन में मन लगाओ और इधर-

उधर की चुगलियाँ करनी छोड़ दो। इन दोनों दवाओं से बड़ा आराम मिलेगा तुम्हें।" मनोहर गम्भीरता पूर्वक बोला।

ननका मनोहर के मुख की गम्भीरता को देखकर आँखें मटका कर बोला, "बेटा ! भगवान् का भजन करने के अलावा अब और कोई काम करने लायक भी तो मैं नहीं रह गया हूँ। और रही चुगलियाँ करने की बात, सो यह काम मैंने जीवन में कभी नहीं किया।"

मनोहर मुस्करा कर बोला, "मैंने तो दवाइ बतलादीं आपको। आप इनका प्रयोग करेंगे तो आपको आराम होगा, नहीं करेंगे तो बीमारी बढ़ जाएगी।"

इतना कहकर मनोहर घेर की ओर बढ़ गया। ननका से और अधिक बातें करने में समय नष्ट करना उसने उचित नहीं समझा उसने।

: ७ :

ननका की आदत थी कि वह उसके पास-पड़ौस में क्या होता है उसे सूँघने का प्रयास करता रहता था।

दूसरे दिन मैंने मानसिंह और रिसालसिंह को हल लेकर खेतों पर नहीं जाने दिया। अपने दोनों भय्यों को नये कपड़े पहनने को दिये और रसोई में राँधने को आलू-गोभी का साग मँगाया। आज मैंने भैंस के पूरे दूध की खीर बनाई और उसमें किशमिश और गोला काटकर डाला।

सुबह को नये कपड़े पहन कर जब मानसिंह, रिसालसिंह और मनोहर घर से निकले तो ननका की दृष्टि उन पर पड़ी। ननका बोला, "अरे मानसिंह ! आज तो बड़े ठाट-बाट के साथ बन-ठन कर निकले हो तीनों। क्या किसी व्याह-शादी में जाने की तैयारी है ?"

मानसिंह मुस्करा कर बोला, "है तो चचा !"

"अरे किसका व्याह है ?" ननका ने आश्चर्य-चकित होकर पूछा। गाँव में शादी हो और ननका को पता ही न चले, यह अचम्भे की बात थी।

मानसिंह मुस्करा कर बोला, "हमसे बनने की कोशिश न किया

करो चचा ननका ! हमसे तो बसन्ती जीजी ने कहा है कि चचा ननका की बारात जाने वाली है आज । हम समझ गये कि तुम ऐन बारात चलने के समय ही बन-ठन कर दूल्हे बनोगे । हमें तो जीजी ने तुम्हारी बारात के लिए ही सजाया है ।"

मैं अपने घर के द्वार पर खड़ी ननका और मानसिंह की बातें सुन रही थी । मानसिंह का जवाब सुनकर मैं लोट-पोट हो गई, मन ही मन में ।

ननका आँखें मटका कर मुँह लटकाये हुए दर्द भरे स्वर में बोला, "अरे मानसिंह ! क्यों मज़ाक करता है बूढ़ों का ? क्या तू बूढ़ा नहीं होगा किसी दिन ?"

मानसिंह हँसकर बोला, "हूँगा क्यों नहीं चचा ! लेकिन तुम्हारी तरह शादी की इच्छा नहीं रखूँगा बुढ़ापे में ।" कहकर ये तीनों आगे बढ़ गये । ननका इनकी ओर टकटकी लगाये देखता रहा अपनी चौखट पर ही बैठा रहा ।

ननका बेचारे के दिल में इस बात का बड़ा अरमान था कि उसकी जीवन भर शादी ही न हो सकी । वह आदित्य ब्रह्मचारी था, परन्तु मजबूरन । जीवन में तीन बार उसके बदन पर हल्दी मली गई, उबटन मला गया, कँगना बाँध कर वह बारात ले गया, परन्तु शादी सम्पन्न न हो सकी । लड़कियों का रिश्ता करने के लिए वर खोजने को आने वाले नाई ब्राह्मणों को वह कुछ ले-दे कर पटा तो लेता था, परन्तु जब बारात लेकर ब्याहने जाता था तो बेटी वाले इसकी सूरत देखकर अपनी लड़की के फेरे फेरने से स्पष्ट इंकार कर देते थे । गाँव के लोग तफ़री के लिए उसकी बारात में चले जाते थे और जब शादी नहीं होती थी तो खिलखिला कर हँसते हुए लौट आते थे । उसीके सिर लड्डू-कचौड़ियाँ उड़ाते थे और उसी को मूर्ख बनाते थे ।

ये घटनाएँ उसके जीवन में ऐसी घटी थीं कि जिन की स्मृतियाँ उसके मस्तिष्क पर छा गई थीं ।

इसीलिए जब वह गाँव में किसी की शादी होती देखता था तो उसके हृदय में भक-भक करके आग जलने लगती थी।

वह किसी का रिश्ता होते देखता था तो उससे वह सहन नहीं होता था। वह उसकी बुराई करने की इच्छा मन में न रहने पर भी बुराई कर ही डालता था और इसी आदत के अनुसार वह मानसिंह के लिए आये हुए कई रिश्ते खराब कर चुका था।

वह मानसिंह का पड़ौसी था, इसलिए उसे पता भी हर बात का चल ही जाता था।

आज भी जब तक मानसिंह के घर में साग-सब्जी और खीर इत्यादि बनती रहीं तब तक तो उसे कुछ पता नहीं चला, परन्तु जब पूड़ियों की कढाई चूल्हे पर चढ़ी और घी की महँक उसकी नाँक में घुसी तो वह तुरन्त समझ गया कि अवश्य आज कोई मानसिंह का रिश्ता करने के लिए आने वाला है।

मानसिंह और रिसालसिंह के उजले वस्त्रों का सम्बन्ध उसने तुरन्त अपनी नाँक में घुसने वाली घी की सुगन्धि से जोड़ लिया और उसका दिल मसमसाने लगा।

उसे आज का मानसिंह का किया गया उपहास भी भला नहीं लगा था। उसकी जलन भी उसके दिल को जला रही थी। उसके मन में एक कुरेदना सी लग गई कि कब कोई मानसिंह को देखने के लिए गाँव में आये और कब वह उसकी बुराई उससे करके इनके काम को मलियामेट करे।

वह अवसर की ताक में सुधर-सँवर कर अपने घर की चौखट पर बैठ गया।

रिसालसिंह ने आज सवेरे ही भंगिन से अपने घेर के चौक में रड़का लगवाकर सफ़ाई करा दी थी और घेर के दुकड़िया में चार बड़ी-बड़ी चौड़ी चारपाइयाँ बिछवाकर उन पर दरी और चादरें लगवादी थीं।

रिसालसिंह के जीजा जी निश्चित समय पर उन चौधरी सहाब के

साथ गाँव में आये और घेर में उनको सम्मान के साथ मानसिंह और रिसालसिंह ने बिठलाया।

वह मनोहर को देखकर बोले, "अरे ! तुम भी यहीं हो मनोहर !"

मनोहर मुस्करा कर बोला, "जी हाँ ! मैं तो कई दिन का आया हुआ हूँ। भाभी ने बुलाया था मुझे।"

रिसालसिंह ने घर से लेजा कर अपने जीजा जी और उन्हें दूध के दो गिलास दिये।

फिर नहा-धोकर वे खाना खाने के लिए घर आये तो चौधरी साहब ने हमारे घर के बराबर में ही चौखट पर ननका को बैठे देखा। उसे देखा तो वह वहीं ठहर गये और उसकी शक्ल देखकर रिसालसिंह के जीजा जी से बोले, "भाई दयाराम ! देख रहे हो, यह चौधरी साहब, जो सामने चौखट पर बैठे हैं, हमारे गाँव में दूल्हा बनकर गये थे। बारात हमारे पड़ौस में ही गई थी।

जरा ठहरो, मैं इनसे पूछ लूँ कि कहीं बेचारों की शादी हो गई या नहीं।"

इतना कहकर वह सचमुच ही ननका के पास जा पहुँचे और मुस्करा कर बोले, "चौधरी ! राम राम !"

उनकी शक्ल देखकर ननका भी उन्हें पहचान गया। वह दबी सी जबान से बोला, "राम राम चौधरी !"

वह बोले, "मैंने कहा, तुमने मुझे पहचाना भी या नहीं। कहीं शादी का ढंग-ढौल बना भी तुम्हारा या अभी तक ब्रह्मचारी ही बने बैठे हो।"

उनकी बात सुनकर ननका का जी भर आया। उसे पुरानी सब बातें याद आ गईं और इन चौधरी के वे बोल उसके कानों में बज उठे जो उन्होंने उस समय कहे थे जब यह दूल्हा बनकर, सेहरा बाँध कर, उबटन मलकर, उनके गाँव में गया था।

वह भारी मन से बोला, "चौधरी जी ! आप मेरे काम में रोड़ा न अटकाते तो मेरी शादी हो ही जाती।"

ननका की बात सुनकर उन्हें हँसी आ गई । वह बोले, "चलो भाई भूल हुई हमसे। लेकिन अब हम अपनी उसी भूल को सुधारने के लिए आये हैं।"

उन्होंने यह बात इतनी गम्भीरता पूर्वक कही कि ननका कुछ समझ ही न सका। वह एक टक उनके चेहरे पर देखता रह गया।

वह बोले, "तो हो तय्यार तुम। में सब मामला पक्का करके आया हूँ तुम्हारे लिए ।"

रिसालसिंह के जीजा जी बोले, "तो आपकी तो यहाँ पहली भी जान-पहचान निकल आई और वह भी पड़ौस में ही। चौधरी साहब ! इस चीज़ के लिए तो हम भी आप से सिफ़ारिश करेंगे । चौधरी ननकासिंह की शादी आप कहीं से अवश्य करा दें । हम से तो यह कार्य हो नहीं सका आज तक, परन्तु आपके लिए यह कार्य कठिन नहीं है।"

और बार जब रिसालसिंह के जीजा जी के सामने यह प्रसंग चलता था तो ननका हँस कर कह देता था, अरे चौधरी ! जाओ बस ! मुझ बूढ़े से क्या हँसी करने चले हो ? शादी ही करानी है तो मानसिंह और रिसालसिंह की कराओ।' परन्तु इस बार उसकी ज़बान से ये शब्द भी न निकल सके।

आज ननका का दिल ग़मगीन हो गया । वह मन भारी करके बोला, "चौधरी साहब ! अब क्या शादी करायेंगे आप मेरी ? जब मेरी शादी हो ही जाती, तभी आपने नहीं होने दी।"

ननका की यह बात सुनकर चौधरी साहब खिलखिला कर हँस पड़े और बोले, "चौधरी ! तुम गनीमत समझो कि मैंने तुम्हें बचा दिया। वरना जो हरकत तुमने की थी, उसपर तो तुम्हारे सिर पर वे जूतियाँ पड़तीं कि चाँद पर एक भी बाल नज़र नहीं आता।

तुम्हें क्या पता कि जिन नाई और पंडित जी से मिलकर तुमने वह हरकत की थी उनकी गाँव वालों ने क्या गत बनाई ?"

रिसालसिंह के जीजा जी मुस्करा कर बोले, "चौधरी साहब ! आप तो आज राज की बातें सुना रहे हैं। हमें इस गाँव में आते दसियों वर्ष हो गये और चौधरी ननकासिंह से हमारी हमेशा ही भेंट होती है, परन्तु ये राज की बातें हम आज तक नहीं जान पाये।"

चौधरी साहब मुस्करा कर बोले, "चौधरी ननकासिंह ! अब मैंने आपके लिए ऐसी जोड़ी छाँटी है कि जिसमें सिर पर जूतियाँ पड़ने की नौबत नहीं आयेगी। घर की चौखट के एक किनारे जिस तरह तुम बैठे खाँस रहे हो इसी तरह चौखट के दूसरे किनारे पर बैठी वह खाँसती रहेगी। भगवान् ने चाहा तो तुम दोनों की जोड़ी बहुत सुन्दर रहेगी।"

मानसिंह और रिसालसिंह मुस्करा रहे थे उनकी बातें सुनकर। रिसालसिंह के जीजा जी बोले, "यह काम तो आप कर ही डालिए चौधरी साहब !" और फिर ननका की ओर देखकर बोले, "चौधरी ननकासिंह ! 'हाँ' कर दीजिये आप। बेचारे मानसिंह और रिसालसिंह का पड़ौस भी आबाद हो जायेगा।"

ननका इस समय की ये उपहासपूर्ण बातें सुनकर आज सुबह के मानसिंह के उपहास को भूल ही गया। उसे चौधरी साहब से अपनी जान बचानी कठिन हो गई। कहाँ तो उसने सुबह मानसिंह की बातें सुनकर यह निश्चय किया था कि जो आदमी इसका रिश्ता करने आयेगा उसके सामने इसके घर का कच्चा चिट्ठा खोल कर उसे उछ-टाने का प्रयास करेगा और कहाँ अब उसे अपनी ही जान छुड़ानी कठिन हो गई।

वह अपनी गर्दन नीची ही किये चुपचाप सुनता रहा और याद करता रहा उस पुरानी घटना को जो उनके गाँव में उस पर बीती थी।

उस बारात में चचा दीनानाथ भी गये थे और उन्होंने लौट कर

वह पूरा किस्सा मुझे सुनाया था । उन्होंने बतलाया था कि वहाँ एक चौधरी ने ननका का सेहरा-वेहरा उतार कर दूर फेंक दिया था और इससे कहा था, "तुरन्त अपनी बरात को लेकर गाँव से बाहर हो जाओ, वरना वह बे-भाव की पिटाई होगी कि याद रहेगी जीवन भर।' वह बोले, 'बस मैं तो तुरन्त पीछे से अकेला ही खिसक आया।'

मैंने हँस कर कहा था, "यह तो खूब बारात की आपने चचा !"

चचा भी हँसकर ही बोले, "बारात क्या की बेटी ! यह सिर हो गया तो जाना ही पड़ गया। दिल तो मेरा तनिक भी नहीं कर रहा था जाने को, परन्तु नाँ भी नहीं कर सका ननका को। एक बार इसने मेरे कहने से मेरे एक मुकदमे में गवाही दी थी। इसके इसी अहसान में दबकर मुझे जाना पड़ा।'

इन लोगों की ये बातें चल ही रही थीं कि तभी चचा दीनानाथ भी सामने से आ गये और इन चौधरी साहब को ननका के घर के सामने खड़े देखकर, तनिक सहम से गये।

उनकी कुछ समझ में न आया कि क्या माजरा था। उन्होंने आगे बढ़कर मानसिंह से धीरे से पूछा, "क्या बात है मानसिंह ?"

मानसिंह मुस्करा कर बोला, "कुछ नहीं चचा ! यह चौधरी साहब चचा ननका का रिश्ता लेकर आये हैं।"

चचा दीनानाथ उन्हें पहचान कर धीरे से आश्चार्य के साथ बोले, "ननका का रिश्ता, और यह चौधरी लाये हैं ? गलत, बिलकुल गलत, यह तो ऐसे आदमी हैं कि इस बेचारे का काम कहीं बनता भी हो, तो तब भी न बनने दें।"

चचा दीनानाथ ने यह बात धीरे से ही कही थी, पर उसका एक-एक शब्द उनके कानों में पड़ रहा था।

वह मुस्करा कर बोले, "आपने ठीक अनुमान लगाया चौधरी साहब ! परन्तु इस समय मैं वास्तव में चौधरी ननकासिंह का रिश्ता लेकर ही आया है। एक बार यह बारात लेकर गये थे हमारे गाँव में।

उस समय मेरे कारण इनका विवाह रुक गया। मुझे बड़ा दुःख हुआ बाद में कि मुझसे कितना बड़ा अनर्थ हो गया। एक आबाद होता हुआ घर, मैंने आबाद होने से रोक दिया। आज मैं अपनी उसी भूल को सुधारने आया हूँ। ज़रा आप ही सिफ़ारिश कर दीजिये इनसे कि यह रिश्ता स्वीकार कर लें। लाजवाब जोड़ी रहेगी इनकी। बहू ऐसी मिलेगी इन्हें कि इनसे हर बात में मेल खायेगी। यह एक बार खाँसेंगे तो वह दो बार, यह एक वर्ष में मरेंगे तो वह दो वर्ष में। बहरहाल जब इनकी अर्थी बँधेगी तो उस पर चूड़ियाँ फोड़कर डालने वाली होगी इनके पास। किसी की जबान से यह नहीं निकलेगा कि चौधरी ननका सिंह जीवन भर विवाह के लिए तरसते ही रहे और उन्हें पत्नी नसीब ही न हो सकी।

मैं इनके जीवन की एक कमी को पूरा करना चाहता हूँ।"

चचा दीनानाथ बहुत सीधे आदमी थे। वह हेर-फेर की बातों का अर्थ लगाना नहीं जानते थे।

उन्होंने ननका के चेहरे पर देखा और चाहा कि उससे कहें, 'अरे ननका! यह सुनहरी अवसर हाथ आया है तेरे। अविवाहित से विवाहित तो बन ले। तेरे जीवन में जो कमी है, उसे पूरा कर।' परन्तु कह नहीं सके वह।

रिसालसिंह के जीजा जी को पास खड़े देखकर बोले, "अरे! बेटा! तुम कब आये? तुम्हें तो मैंने देखा ही नहीं।"

"अभी आज ही आया हूँ चाचा जी!

"घर पर तो सब कुशल-मंगल है?

बेटा! इस बार बहुत दिन कर दिये तुमने आने में।" चचा बोले।

चचा दीनानाथ के आजाने से बातों कि दिशा बदल गई। ये सब बातें करते हुए आगे बढ़कर घर तक आ गये।

मानसिंह और रिसालसिंह ने अपने जीजा जी तथा चौधरी साहब को प्रेम पूर्वक भोजन कराया।

भोजन करके सब घेर में चले गये।

मानसिंह और चचा दीनानाथ अपने जीजा जी और चौधरी साहब के साथ घेर में चले गये। रिसालसिंह मेरे पास ही रह गया।

रिसालसिंह ने हँस कर तब ये ऊपर की बातें मुझे सुनाईं तो मेरे मन की चिंता दूर हुई। मुझे विश्वास हो गया कि ननका का तीर इन चौधरी साहब पर नहीं चल सकता और जब यह रिश्ता पिता जी ने भेजा है तो इसमें कोई कठिनाई नहीं आयेगी।

रुपया मानसिंह की शादी का यह चौधरी साहब पहले ही दे चुके थे उसके जीजा जी को। यहाँ केवल वह अपने दिल की तसल्ली करने और मानसिंह को देखने आये थे।

रिश्ता पक्का हो गया और शादी की तिथि निश्चित हो गई। मानसिंह की शादी बेटा ! मैंने खूब धूम-धाम के साथ की। सारे गाँव की मैंने लड्डू-कचौरियों की जौनार की और किसी बात में भी कमी नहीं आने दी।

परन्तु बेटी वाले से न तो मैंने कुछ याचना ही की और न अधिक बारात लेकर ही मैंने मानसिंह और रिसालसिंह को जाने दिया।

चचा दीनानाथ को यह छोटी सी बारात अच्छी नहीं लगी। गाँव के कुछ लोगों ने इधर-उधर इस छोटी बारात की हँसी भी की और उन हँसी करने वालों में ननका सब से आगे था।

जो कोई भी उसके दरवाज़े के सामने से निकलता था, उसी से वह कहता था, 'अरे भाई फ़लाने ! कुछ सुना तुमने ? मानसिंह की बारात में लँगड़ा डेढ़ पौहन गया है। हम जब अपनी बारात ले गये थे तो बीस पौहन थे उसमें।'

यही बात जब ननका ने चन्दू से कही तो उसे हँसी आ गई। चन्दू

उसकी बारात में हो आया था और जो दुर्दशा उसकी हुई थी, उसकी स्मृति को वह भुला नहीं सका था।

वह बोला, "ननका ! तेरी बारात में बीस पौहन ज़रूर गये थे और मानसिंह केवल पाँच पौहन लेकर गया है, परन्तु तेरे बीस भी बेकार रहे और उसके पाँच भी कारगर होंगे। तू बीस पौहन लेजाकर भी दुलहन नहीं ला सका और वह पाँच पौहनों में ही दुलहन को लाकर खड़ी कर देगा।"

चन्दू की बात सुनकर ननका की गर्दन लटक गई। उसके मटकने वाले नेत्रों में पानी भर आया। उसे अपनी नाकामयाबी पर हार्दिक खेद हुआ।

ननका की शादी करने की इच्छा जीवन भर पूरी न हो सकी। कई दाव चले, परन्तु सब नाकारा साबित हुए। जितने भी तीर छोड़े सब खाली गये। जितने जाल पूरे, सब बेकार हो गये और जितने काँटे बिछाये उनमें से एक में भी कोई मछली फँस कर न आ सकी।

मानसिंह की शादी हो गई। घर में बहू आ गई। सब रस्में पूरी कीं और मैं बहू का मुँह देखकर गद्‌गद् हो गई।"

कहते-कहते मैंने देखा कि बसंती बुआ जी की आँखों में पानी भर आया। उनका मन कुछ उदास सा हो गया।

मैंने बोला, "आप थक गई मालूम देती हैं बुआ जी ! आगे की कहानी आप कल सुना दीजिये।"

बसंती बुआ जी आँखें पोंछ कर बोलीं, "नहीं बेटा ! मैं थकी नहीं हूँ तनिक भी। तुम्हें अपनी पुरानी कहानी सुनाने में मुझे बहुत आनन्द आ रहा है। मुझे लग रहा है कि इसे सुनाने के पश्चात् जैसे मेरा बहुत बड़ा बोझा हल्का होता जा रहा है।

ये आँसू जो अचानक ही मेरी आँखों में आ गये बेटा ! ये माँ की याद करके आ गये।

माँ की मृत्यु के साथ इस घर से लक्ष्मी उठ गई थी। और सच-

मुच तब से आज तक हम तीनों भाई-बहनों ने जितना कष्ट उठाया वह बतलाया नहीं जा सकता। कोई-कोई दिन तो हमारे जीवन में ऐसा आया कि तमाम दिन चूल्हे में आँच ही नहीं सिलगी और हम तीनों भूखे ही सो गये।

एक दिन की बात मुझे याद है बेटा ! जब दो दिन से हमारे घर में आटा नहीं था तो मैं जंगल में गई और नहर की पटरी पर से जंगली बथुवा तोड़ कर लाई और उसे लाकर मैंने पतीली में राँधा।

जब हम तीनों भाई-बहन उसे खाने के लिए बैठे तो चमेली आ गई। यह सब देख कर वह बोली, "अरे ! यह क्या कर रही है तू बसंती ?"

मेरी आँखों में आँसू आ गये चमेली की बात सुनकर और मेरे मुँह में जो बथुवे का कौर था वह हलक में ही अटक गया।

मैंने देखा कि चमेली को क्रोध आ गया। वह कड़क कर बोली, "बसंती तू बड़ी डायन है। क्या इन्हें भूखों मारने की ठान ली है तूने?" उसने झपट कर हम तीनों के सामने से बथुवे की थाली उठाकर एक ओर कर दी और तुरन्त दौड़ कर अपने घर से एक मॉट भरा आटा उठा लाई।

मैं देखती ही रही। उसने परात में आटा डालकर माँड लिया और चूल्हे में उपलों का उभीना लगाकर उसपर तवा रख दिया।

चमेली ने रोटियाँ बनाकर हमें खिलाईं और खाने के बाद बोली, "देख बसंती ! तुझे कहे देती हूँ कि यदि तूने भविष्य में कभी ऐसी हरकत की तो मुझ से बुरी नहीं होगी तेरे लिए।"

चमेली का वह क्रोधपूर्ण चेहरा बेटा ! आज भी मेरी आँखों के सामने खड़ा है। चमेली का बहन-जैसा प्यार, जो मुझे अपने जीवन के इस कठिन काल में प्राप्त हुआ, वह मेरे जीवन की अमर थाती है बेटा !

इन दिनों में रिसालसिंह के जीजा जी बहुत बार यहाँ आये परन्तु मैंने कभी भी अपनी कठिन परिस्थिति उनपर ज़ाहिर नहीं होने दी।

उस दिन जब चचा दीनानाथ के रुपये की समस्या मेरे सामने आई तो मुझे उनसे कहना ही पड़ा और उसके पश्चात् जब मैंने उन्हें अपने उस कठिन समय की व्यथा-पूर्ण कहानी सुनाई तो वह बहुत क्रुद्ध हुए मुझ पर, ठीक उसी प्रकार जैसे चमेली अनेकों बार हुई थी। उनकी आँखों में आँसू भर आये और वह बोले, "बसंती ! तूने मुझ से भी अपनी बात छिपाई, यह अच्छा नहीं किया तूने।"

मैंने मुस्करा कर उत्तर दिया, "मैंने अपनी कोई बात आप से कभी नहीं छिपाई। यह बात मानसिंह और रिसालसिंह की थी, जिसे धरोहर के रूप में बापू और माँ मेरे पास छोड़ गये थे, यह नहीं बतला सकी आपको। बतला देती तो शायद इतना कष्ट न उठाना पड़ता, परन्तु आप भी तो स्वतन्त्र नहीं थे उस समय। इसीलिए मैंने बतलाना उचित नहीं समझा।

मानसिंह की बहू का मुख मैंने देखा तो हृदय को विश्वास हुआ कि माँ के साथ इस घर की जो लक्ष्मी इस घर से उठ गई थी वह अब फिर लौट आई।

तभी मनोहर ने घर में प्रवेश किया। वह बहुत प्रसन्न था और रिसालसिंह उसके साथ था।

घर में प्रवेश करते ही बोला, "देखा भाभी ! मैंने और भय्या ने मिलकर मानसिंह और रिसालसिंह को पछाड़ दिया। अब तो तुम्हें चलना ही होगा मेरे साथ। तुम्हारे पास यही तो बहाना था यहाँ रहने का कि मानसिंह और रिसालसिंह की रोटियाँ बनाने वाला यहाँ कोई नहीं है। सो हमने अब उसका प्रबन्ध कर दिया।

और भाभी ! पिता जी कह रहे थे कि इसी वर्ष वह रिसालसिंह का भी रिश्ता भेज देंगे। पिछली बार जब वह अधिक बीमार हुए तो उन्हें मानसिंह और रिसालसिंह की शादी की बड़ी चिन्ता थी।"

मैं मुस्करा कर बोली, "अब सचमुच तुम्हारी विजय हुई मनोहर ! तुमने जो दाव चला, वह पूरा उतरा और मानसिंह बेचारे को तो तुमने चित्त ही कर दिया। लेकिन रिसालसिंह ज़रा पहलवान आदमी है। इसे चित्त करलो, तो जानें।"

रिसालसिंह मेरी बात सुनकर तनिक लजा सा गया, परन्तु मनोहर सीना तान कर बोला, "भाभी तुम देखती जाओ ज़रा, भय्या रिसालसिंह को कैसा चित्त लाता हूँ। इनकी पहलवानी भी मुझे देखनी है और फिर देखता हूँ कि ये लोग मेरी भाभी पर कैसे कब्ज़ा किये रखते हैं। इसी वर्ष में मैंने आपको इनके बंधन से मुक्त न कर लिया तो मेरा नाम भी मनोहर नहीं।"

कहते-कसते बसन्ती बुआ जी को फिर पहले की तरह बेहोशी सी आ गई। इस बार हमें उतनी घबराहट नहीं हुई जितनी पहले हुई थी।

मैं अपनी पत्नि से बोला, "अच्छा राजबाला ! हम लोग अब घेर की ओर जा रहे हैं। अब बसन्ती जीजी से कल सुबह मिलेंगे।"

वह बोलीं, "मैं भी अब घर जा रही हूँ। ज़रा जल्दी ही लौट आना घेर से। माता जी ने खाना बना लिया होगा। और हाँ ! जंगल में अधिक दूर न जाना।"

मैं मुस्करा कर बोला, "क्यों क्या बात है जंगल में ?"

वह बोलीं, "गंग नहर के किनारे जो घिनके वृक्ष खड़े हैं, इनमें बनों से एक चीता चला आया है यहाँ के जंगल में। बड़ा भयानक और खूँखार है वह चीता। कल उसने एक भैंस को मार डाला। एक सप्ताह हुआ एक ग्वाले को खा लिया। और इसी प्रकार वह कई हमले कर चुका है। रात्रि के समय खेतों में चला आता है। उसके भय से रात-बिरात लोगों ने अपने खेतों पर जाना ही बन्द कर दिया है।"

मैं बोला, "हम लोग जंगल में जायेंगे ही नहीं। और अब तो वैसे भी अन्धेरा हो गया है। हम अभी आते हैं घर वापस।"

यह कह कर मैं और बाँके बिहारी घेर की ओर चले गये।

: ८ :

मैं बाँके बिहारी से घेर की ओर जाते हुए मार्ग में बोला, "बाँके-बिहारी ! किये तुमने प्रेम की देवी के दर्शन ? क्या यह प्रेम तुम्हारे सेक्स के प्रेम से कहीं अधिक आकर्षक नहीं है। क्या इस प्रेम का चित्रण उस प्रेम से कहीं अधिक महत्वपूर्ण नहीं है जिसे तुमने प्रेम की संज्ञा दी है ? क्या इसमें तुम्हें आत्मानंद की प्राप्ति नहीं हुई ?"

बाँकेबिहारी मंत्र-मुग्ध सा हो गया था बसंती बुआजी के प्रेम और त्याग की कहानी सुनकर।

मैं बोला, "शादी के उपरान्त क्या बसंती बुआजी अपने आनन्द-पूर्ण जीवन में मधुर विचरण करके अपने छोटे भाई रिसालसिंह और मानसिंह को भुला नहीं सकती थीं ? उन्हें अच्छा घर-वर मिल गया था। एक सम्पन्न परिवार था वह। उसमें खाने-पीने और आनंद की सब सुविधाएँ उपलब्ध थीं। सास-ससुर और पति का प्यार था। किसी प्रकार का कोई कष्ट नहीं था।

फिर क्यों इन्होंने यहाँ रहकर आर्थिक संकट में अपना जीवन व्यतीत किया ? केवल इस लिए कि सेक्स से सम्बन्धित प्रेम से ऊपर भी कुछ वस्तुएँ और हैं। वे त्याग और कर्त्तव्य से सम्बन्धित हैं।

जीवन में सेक्स का एक महत्वपूर्ण स्थान है और वह बसंती बुआ-जी के जीवन में भी आया। इनकी एक लड़की और एक पुत्र थे। उनके लिए भी इनका दुलार कम नहीं था, परन्तु उनका अधिकांश पालन-पोषण उनकी दादी ने ही किया था। उनके लिए दादी का सहारा था। इस लिए बसंती बुआजी को यहाँ रहने में और भी सुविधा मिली।

अपने बच्चों को सास के पास छोड़ कर बुआजी ने अपनी माँ के बच्चों का संरक्षण किया और आखिर इस उजड़ते हुए घर को बसा ही दिया।

आज इस घर की बहुत सम्पन्न दशा है। रिसालसिंह और मान-सिंह शान के साथ अपना जीवन व्यतीत कर रहे हैं। यह सब बुआजी की ही बदौलत हुआ।

मेरी बात सुनकर बाँके बिहारी गम्भीरतापूर्वक बोला, "शर्मा जी! यहाँ लाकर आपने मेरा दृष्टिकोण ही बदल दिया। आज मुझे लग रहा है कि मैंने आज तक जिस दिशा में सोचा और विचारा, वह केवल समय का अपव्यय किया। अब मैं अनुभव कर रहा हूँ कि वास्तव में वह प्रेम नहीं है और जहाँ प्रेम नहीं है वह साहित्य नहीं है।

मैं प्रेम को साहित्य की कसौटी मानता हूँ, परन्तु प्रेम की जो धारणा मैं अपने मस्तिष्क में बना चुका था उसे आपने जड़मूल से ही उखाड़ कर फेंक दिया।

बसंती बुआजी वास्तव में प्रेम की देवी हैं और इनका चरित्र महान् है। सच यही है कि मानवता ऐसी ही कर्तव्यपरायण देवियों की तपस्या पर ठहरी हुई है।"

बाँकेबिहारी की बात सुनकर मुझे हार्दिक संतोष हुआ। मैं मुस्करा कर बोला, "तुम्हारे विचारों में परिवर्तन हुआ, यह देखकर मुझे हार्दिक संतोष हुआ। साहित्य-रचना का अभिप्राय रचनाओं को 'हिट' बनाना नहीं है। 'हिट' बनना या न बनना व्यवसाय का एक अंग है। प्रकाशक किसी रचना के विषय में इस दृष्टिकोण से सोचे तो ठीक है, परन्तु लेखक के मस्तिष्क में यह दृष्टिकोण रहना उचित नहीं।

साहित्यकार उस गोता लगाने वाले के समान है जो समुद्र की तह से मोती को निकाल कर लाता है। यह दुनियाँ बहुत बड़ी है। इसमें बहुत से मोती बिखरे पड़े हैं और बहुत से पत्थर। साहित्यकार यदि स्वस्थ विचारों का है तो वह सच्चे मोती चुनेगा, चाहे उनपर दिखावटी मोतियों जैसी आब न हो, और यदि वह स्वस्थ विचारों का नहीं है तो

वह बनावटी मोतियों को खोज कर पाठकों की आँखों को चमत्कृत करने का प्रयास करेगा।

यह हो सकता है कि यह चमत्कार चन्द क्षणों के लिए कुछ दिलों को गुदगुदा दे परन्तु इसका स्वस्थ प्रभाव मानव पर नहीं पड़ सकेगा, यह कोई स्थायी थाती मानव-समाज को नहीं सौंप सकेगा।

बसंती बुआजी प्रेम की देवी हैं, करुणा की देवी हैं, कर्त्तव्य की देवी हैं। ये तीनों ही गुण महान् हैं, यदि किसी व्यक्ति के जीवन में समाविष्ट हो सकें। मैं इन्हें असाधारण गुण मानता हूँ।"

बातें करते हुए हम घेर में पहुँच गये। घेर के ठीक पीछे नानाजी का बाग़ है, हम उसी में दिशा-मैदान के लिए गये और निवृत होकर कुएँ पर हाथ मुँह धोये।

बाँकेबिहारी कुएँ पर बैठ कर बोला, "बहुत ही सुन्दर स्थान है यह तो शर्मा जी ! वास्तव में साहित्य-साधना का स्थान तो यहीं है। न मोटरों की भौं-भौं पौं-पौं है और न कंधे-से-कंधा छिलने वाली भीड़ का शोरोगुल। शांत प्रकृति का साम्राज्य है चारों ओर। मेरा तो बड़ा मन लग रहा है यहाँ।"

मैं हँस कर बोला, "यहाँ सिनेमा नहीं है देखने के लिए और न ही तुम्हारे मित्र हैं कमलकुमार। कुछ उजले और अधिकांश मैले लोगों की बस्ती है, जिन्हें रात-दिन मिट्टी में काम करना होता है। हाँ हरियाली अवश्य है यहाँ, जो आँखों को आनंद देती है, परन्तु यह आनंद उस सुख से भिन्न है बाँके बिहारी ! जो दिल्ली के बड़े-बड़े होटलों और रेस्टारेन्टों में दृष्टि पसारने पर प्राप्त होता है। दिल दोनों को देखकर हिलोरें मारता है। परन्तु अन्तर केवल इतना ही है कि इस आनंद की प्राप्ति हर व्यक्ति नहीं कर सकता और उस पर हर व्यक्ति अपनी आँखें पसार कर अपने दिल में कुलमुलाहट पैदा कर सकता है।"

बाँके बिहारी बोला, "इस शांत वातावरण में मैंने जिस आनंद का

आज अनुभव किया है शर्मा जी ! वह मेरे जीवन में आने वाली एक नई वस्तु है।"

मैं मुस्करा कर बोला, "नई है, इसीलिए तो तुम इतने आकर्षित हो रहे हो इसकी ओर। लेकिन यह सर्वदा नई नहीं रह सकती। आज जो नई है वह कल पुरानी होगी। क्या पुरानी पड़ने पर भी आनंद की भावना तुम्हारे मन में बनी रह सकेगी ? तुम्हें अपने वे कालेज के साथी, वह मटरगश्ती, वह सैर-सपाटा, वह कैनाटप्लेस की सैर याद नहीं आयेंगे ? मैं कहता हूँ अवश्य आयेंगे। तुम्हारा यह आनंद चंद दिनों में ही फीका पड़ने लगेगा और तब तुम सोचोगे कि कहाँ बियाबान में आ फँसे ? न यहाँ कोई बातें करने योग्य व्यक्ति है। न सभा है, न सोसायटी है, न एन्टरटेनमेन्ट है, न प्रातःकाल का पत्र है, यहाँ आकर कहाँ फँस गये ? गाँव क्या है, यह तो एक खंदक है, जिसमें गिर कर सारी दुनियाँ से सम्बन्ध ही विच्छेद हो गया। यहाँ का जीवन कोई जीवन नहीं है, बिलकुल निर्जीव।"

बाँके बिहारी मेरी ओर को विचित्र दृष्टि से देख रहा था।

मैं बोला, "इस निस्तब्धता और एकांतता में फिर जब तुम यहाँ के लोगों के सम्पर्क में आओगे तो तुम्हें उन्हें समझने में कठिनाई होगी। ये सीधे-सादे लोग जो तुम्हें दिखलाई दे रहे हैं गाँव के, इनके जीवन बड़े जटिल हो गये हैं आज-कल।"

"इनके जीवन भी जटिल हैं ?" आश्चर्य के साथ बाँकेबिहारी बोला।

मैंने कहा, "बहुत। इनका अध्ययन इतना सरल काम नहीं है जितना तुम समझ रहे हो। बड़े-बड़े राजनीतिज्ञों और विचारकों की छाया जिस प्रकार राष्ट्र और समाज पर पड़ती है उसी प्रकार शहरों की छाया ग्रामीण जीवन पर भी पड़ती जा रही है।

आज के गाँव का जीवन पहले से बहुत बदल गया है बाँके बिहारी!

पहले जो चीज़ें जैसी दीखती थीं वे वैसी ही होती भी थीं। हर व्यक्ति स्पष्ट होता था। जो कहता था वह करता था। परन्तु आज कुछ ऐसा हो गया है कि जो कुछ हम देख रहे हैं वह वास्तव में वह नहीं रहा। हर चीज़ पर मुलम्मा चढ़ गया है। जो कोई जो बात कहता है वास्तव में उसका अभिप्राय वह नहीं होता जो कुछ वह कह रहा होता है।

इससे जीवन बड़ा जटिल हो गया है। यह शहरों में अधिक देखने को मिलता है, परन्तु कमी अब गाँवों में भी नहीं रही है इस बात की। स्पष्टवादिता आज कहीं खोजे को भी नहीं मिलेगी।

रात्रि का अन्धकार धीरे-धीरे दिनकर के शेष प्रकाश को दबाता जा रहा था। मैं कुए की मन पर से खड़ा होता हुआ बोला, "चलो अब घर चलें। तुम्हारी भाभी जी प्रतीक्षा में होंगी। उन्हें भय लग रहा होगा इस बात से कि कहीं मैं जंगल की ओर न निकल गया हूँ। यहाँ से लगभग दो फ़र्लांग की दूरी पर गंग नरह बहती है। उसके किनारे-किनारे घूमने में मुझे बड़ा आनन्द आता है। मैं जब भी यहाँ आता हूँ तो गंग नहर के किनारे घूमने अवश्य जाता हूँ। आज वहाँ जाने के लिए तुम्हारी भाभी ने मना कर दिया था। वह सोच रही होंगी कि कहीं मैं चल ही न दिया हूँ उस ओर।"

तभी मैंने देखा कि सामने से अमरसिंह आ रहा था। मैं उसे देखकर बोला, "वह देखो! यह व्यक्ति जो सामने आ रहा है, तुम्हारी भाभी का भाई है, उनके मामा का लड़का। इसे तुम्हारी भाभी ने ही हमें देखने के लिए भेजा है।"

अमरसिंह और निकट आ गया और मुझे देखकर बोला, "जीजा जी नमस्ते! बड़ी देर करदी आपने। बुआ जी खाना लिए बैठी हैं और बीबी परेशान हो रही हैं। वह बार-बार नाराज़ होकर कह रही हैं कि कहीं नहर की पटरी पर न चले गये हों। मना करने पर भी नहर की पटरी पर जाने का प्रलोभन उन्हें वहीं खींचकर ले गया होगा।"

मैं मुस्करा कर बोला, "तबियत तो हो रही थी वहीं जाने की, परन्तु चीते के भय से नहीं जा सका। सुना है कई हादसे कर चुका है वह।"

अमरसिंह बोला, "उसने तो रात-बिरात निकलना ही बन्द किया हुआ है गाँव वालों का। ऐसा भयानक है कि देखकर डर लगता है। एक दिन कई गोलियाँ चलाईं दारोगा जी ने उस पर लेकिन लगी ही नहीं एक भी। उस दिन भाग निकला वह, नहीं तो काम तमाम हो जाता और गाँव वालों की जान बच जाती।"

यहाँ से हम तीनों घर की ओर चल दिए।

घर जाकर हमने भोजन किया और फिर दालान में खाट पर बैठ गए। बाँके बिहारी को मैंने एक धोती दी बाँधने के लिए और कहा, "अब कोट-पैंट उतार दो।"

हम लोग बैठे ही थे कि तभी नाना जी आ गये। वह बसन्ती बुआ जी के यहाँ से ही आ रहे थे।

मैंने पूछा, "अब कैसी तबियत है बुआ जी की ?"

नाना जी बोले, "अब होश में है। लेकिन क्या होश है बेटा ! यह लड़की अब बचती दिखाई नहीं देती। कोई दवा कारगर नहीं हो रही है।"

मैं बोला,"उनकी बातें करने में तो मुझे कोई अन्तर दिखलाई दे नहीं रहा नाना जी ! बातें तो वैसी ही करारी हैं, परन्तु शरीर बिल्कुल दुर्बल हो गया। बदन में रक्त मानो रहा ही नहीं।"

"यही तो बात है और दूसरी बात यह है कि बुखार पीछा नहीं छोड़ रहा। यह बुखार छूट जाय तो जान तो आ सकती है बदन में। एक दवा देकर आया हूँ अब। मुझे विश्वास तो बहुत है कि यह अवश्य कारगर होगी।" नाना जी बोले।

नाना जी की बात सुनकर मुझे कुछ आशा बँधी।

नाना जी के ये बोल मेरी पत्नी के कानों में पड़े तो उन्होंने उतावलेपन में पूछा, "क्या बसन्ती बुआ जी बच जायेंगी नाना जी ?"

"बच जायेगी या नहीं, बावली इसके विषय में मैं क्या कह सकता हूँ, परन्तु हाँ ! बच सकती है। उसका दिल और दिमाग़ सही काम कर रहे हैं। कमज़ोरी रोग दूर होने पर अपने आप दूर हो जाती है।" नाना जी गम्भीरतापूर्वक बोले।

नाना जी की इस समय की बात से मुझे कुछ धैर्य सा बँधा। मुझे लगा कि नाना जी की दवा ने बसन्ती बुआ जी को बिल्कुल स्वस्थ कर दिया। उनका ज्वर टूट गया। उनके शरीर में फिर से शक्ति का संचार हुआ।

मैं बैठा न रह सका। चुपचाप खड़ा हुआ और मेरे पैर मुझे यहाँ से ले चले।

थोड़ी ही देर में फिर बसन्ती बुआ जी के घर के द्वार पर पहुँच गया। मामा रिसालसिंह घर के द्वार पर ही खड़े थे। मैं उनके साथ अन्दर चला गया। इस समय बसन्ती बुआ जी को नींद आ गई थी।

वह बोले, "आज कई दिन बाद इन्हें नींद आई है। जागते और बेहोश होते हुए पगली सी हो गई थीं। आज नींद आ जाय तो अवश्य कुछ आराम मिलेगा।"

मैं बोला, "इनके चारों ओर बिल्कुल शान्ति रखो। कोई शब्द न हो। नाना जी कह रहे थे कि उन्होंने जो नई दवा दी है, उससे अवश्य आराम होगा।"

मेरी बात सुनकर रिसालसिंह ने आशा भरी दृष्टि से मेरे चेहरे पर देखा और कृतज्ञतापूर्ण स्वर में बोले, "लाला ! हकीम जी की कितनी दया है हम पर कि रात-बिरात उन्हें जब भी हम तंग करते हैं तो तुरन्त उठे चले आते हैं।"

मैं मुस्करा कर बोला, "नाना जी की तो यह आदत सभी के लिए है और जहाँ तक बसन्ती बुआ जी की बात है, उन पर तो उनका स्नेह

ही बहुत अधिक है। वह इन्हें देखने के लिए एक हकीम के नाते नहीं आते, बल्कि अपनी बेटी को देखने आते हैं।

वह बुआ जी को माजी से कुछ कम स्नेह नहीं करते हैं।"

"तुम ठीक कह रहे हो लाला ! चमेली और बसन्ती में आपस में बड़ा प्रेम है। दोनों में कुल दस-पन्द्रह दिन की ही तो छोट बड़ाई है।

तुम्हारी माजी यों बहन हैं हमारी, परन्तु हम बसन्ती जीजी की ही तरह उन्हें भी माँ का आदर देते हैं।

हकीम जी इस बार किसी तरह जीजी को बचालें तो मेरा मुँह काला होने से बच जाय। उनके मना करने पर भी मैं जीजी को गंगा जी ले गया। वहाँ न ले जाता तो इनकी यह दशा न होती।" दीनता पूर्वक रिसालसिंह ने कहा।

मैं गम्भीरतापूर्वक बोला, "आप इतने अधीर न हों। मेरा मन कह रहा है कि बुआ जी ठीक हो जायेंगी। यदि आज रात को इन्हें ठीक से नींद आ गई तो निश्चित रूप से इन्हें सुबह तक कुछ आराम होगा।"

इतना कहकर मैं घर लौट आया।

नाना जी ने पूछा, "तुम कहाँ चले गये थे लाला !"

मैं बोला, "यूँ ही उठकर ज़रा बसन्ती जीजी की ओर चला गया था।"

"तो कैसा जी है अब उसका ?"

मैंने कहा, "नींद आ गई है उन्हें।"

मेरी बात सुनकर नाना जी के चेहरे पर प्रसन्नता के आसार दिखलाई दिये। मैं बड़े ध्यान से उनके चेहरे को देख रहा था।

वह बोले, "दवा ने ठीक काम किया। अब यह यदि रात भर सोती रही तो तुम देखना कि सुबह बुखार उतरा हुआ मिलेगा।"

मुझे और मेरी पत्नी को हार्दिक प्रसन्नता हुई नाना जी की यह बात सुनकर।

माजी ने सुना तो वह भी चूल्हे के पास से वहीं को खिसक आई और नाना जी से पूछा, "क्यों पिताजी ! क्या बच जाएगी बसंती ?"

"अभी कुछ देर पूर्व तक तो उम्मीद नहीं थी, लेकिन अब लाला से यह सुनकर कि वह सो रही है, कुछ उम्मीद सी बँधने लगी है। अब कल बतलाऊँगा सुबह।" नाना जी बोले।

नाना जी की इस बात ने नितान्त निराशा के वातावरण में एक आशा की लकीर खींच दी। वह लकीर इन्द्र-धनुष के समान नीले अम्बर में चमक उठी और उसके अन्दर मैंने बसन्ती बुआ जी का मुस्कराता हुआ सुन्दर रूप देखा।

रात्रि को खाना खाने के पश्चात् हम लोग घर के बाहर वाले खुले दालान में सोने के लिए खाटों पर लेट गये थे।

यह दालान बहुत लम्बा चौड़ा है और चारों दिशाओं से स्वच्छ हवा आती है। ऊपर आकाश में तारे झम-झमाते हैं और बराबर में खड़े एक नीम के वृक्ष की पत्तियों का स्वर मन्दी-मन्दी हवा में मिलकर वातावरण में एक स्वरमय कम्पन सी पैदा कर देता है।

जब कभी चाँद निकलता है और वह नीम की पत्तियों में से झाँकता है तो यह चौक और भी आकर्षक हो उठता है।

हम लोग उसी चौक में लेटे थे।

बाँके बिहारी के भावुक हृदय पर प्रकृति के इस मूक संदेश का प्रभाव पड़ा। उसका चेहरा खिल उठा। उसके नेत्रों में प्रकृति का सौंदर्य मचलने लगा।

वह एक दम भावुकता में भर कर बोला, "शर्मा जी ! तुच्छ है इस प्रकृति की सौंदर्य से सनी आभा के सम्मुख शहरों की पाउडर और लिपस्टिकों से पुती-पुताई रंगीन और बनावटी दुनियाँ।"

तब तक चाँद निकल आया था और उसके प्रकाश ने तारों का रंग फीका कर दिया था।

मैं मुस्करा कर बोला, "मुझे विश्वास था बाँके विहारी कि तुम पर गाँव में आकर एक विचित्र प्रकार का प्रभाव पड़ेगा। तुम्हें अपने देश की वास्तविकता में झाँकने का अवसर मिलेगा।

परन्तु अभी तक तुमने जो कुछ भी देखा है, वही गाँव नहीं है। तुमने यह खुला दालान देखा है जिस में कभी पचासों आदमियों का कुनबा रहता था और आज उस में केवल इने-गिने छै व्यक्ति रह गये हैं। हमारे नाना जी इन में सब से बड़े हैं। दो उनके भतीजे और तीन भतीजों के बेटे हैं। इतना बड़ा कुनबा नष्ट हो जाने के पश्चात् भी कितने साहस के साथ नाना जी ने अपने परिवार को सँभाला और भय्यों के बच्चों और उनके पोतों को छाती से लगा कर चले।

प्रेमिका के रूप या गुण पर रीझ कर उसकी कौली भरने वाले बहुत आये होंगे तुम्हारी दृष्टि में, अपनी पत्नियों के प्रेम में फँस कर संसार को भूल जाने वालों की भी कमी नहीं है। छोटे भाइयों के प्रेम में अपने को मिटा देने वाली देवि के दर्शन भी तुम कर चुके।

अब तुम एक ऐसे व्यक्ति के दर्शन करो जो अपने भाइयों के बच्चों और उनके बच्चों के प्रेम में फँसा अपनी एक कन्या और उसकी एक कन्या के सहारे जीवन की नौका को खेता चला जा रहा है।

यह उस से भी आदर्श प्रेम है।

यह प्रेम की दूसरी सीढ़ी है जिस में व्यक्ति अपने रक्त-सम्बन्धों से बाहर की परिधि की ओर झाँकता है, उनके आनंद में आनंदित होता है और उनके कष्ट में दुःखी होता है।

प्रेम की इसी सीढ़ी पर चढ़कर व्यक्ति अपने बाल-बच्चे और पत्नी की सीमा से बाहर निकलता है। उसका दृष्टिकोण विस्तृत होता है।

प्रेम की तीसरी सीढ़ी भी तुम्हें दिखाऊँगा। उस सीढ़ी पर चढ़कर व्यक्ति अपने बाल-बच्चों, संबंधियों और अन्य दुनियाँ के लोगों में कोई

अन्तर नहीं समझता। उसकी दृष्टि सबको सम रूप से देखती है। मनुष्य और मनुष्य का भेद मिट जाता है।

प्रेम की एक चौथी सीढ़ी भी है और वह वह सीढ़ी है कि जिस पर चढ़ कर व्यक्ति केवल मानव मात्र को ही नहीं वरन प्राणी मात्र को एक ही आत्मा का रूप मानने लगता है।

वह स्वयँ प्रेम की साक्षात प्रतिमा बन जाता है। यही तो है प्रेम-योग बाँकेबिहारी ! परन्तु यह कर्त्तव्य से विमुख होकर ऊपर नहीं उठ सकता। यह प्रेम स्वस्थ जीवन के विकास की दिशा है। यह वह नशा नहीं जो शराब से बदन पर छा जाता है, यह वह नशा है जो साफ और स्वच्छ रक्त के नसों में खुल कर बहने से पैदा होता है। यह प्रेम में घुल-घुल कर मरने की बीमारी नहीं है। कर्त्तव्य की कसौटी है यह, त्याग की चरम सीमा है। पूजा का पुष्प है यह। इसे पुजारी ही छू सकता है, कोई अन्य नहीं।

बसंती बुआ जी के पति को मैं सर्वदा पुजारी की पदवी दिया करता हूँ। बुआ जी जैसे पवित्र पुष्प को छूने के एक मात्र वही अधिकारी थे।

एक प्राइमरी स्कूल के अध्यापक थे वह। अपना सब कार्य वह स्वयँ करते रहे और बसंती जीजी की इच्छा के विरुद्ध वह कभी भी इन्हें यहाँ से नहीं ले गये। तनिक सोच कर देखो कि यदि उनके पति-जीवन में अधिकार की भावना होती तो वह कभी भी बसंती बुआ जी के अपने भाइयों के प्रति इतने महान् आकर्षण को सहन न करते। परन्तु वहाँ तो केवल त्याग और प्रेम की भावना थी। उनकी पत्नी जिस रूप में भी अपने को सुखी मानती थी, उसके मार्ग में वह कभी जीवन भर रुकावट बन कर नहीं आये।

अपने गृहस्थ-जीवन का उन्होंने वही साँचा बनाया जिस में चल कर बसंती बुआ जी को कभी आत्मिक कष्ट न हो।

केवल इतना ही नहीं, रिसालसिंह और मानसिंह की आर्थिक स्थिति को सँवारने में सहयोग भी दिया।

यह भी प्रेम का ही एक रूप है।"

ये बातें मैं कह ही रहा था कि तभी मेरी पत्नी और माजी घर से बाहर निकल कर हमारे पास आ गईं। हम दोनों उठ कर खाट पर बैठ गये।

बातों का सिलसिला बसंती बुआ जी की दिशा में हो गया। इस समय इस घर के वातावरण में बसंती बुआ जी छाई हुई थीं। बुआ जी माजी की परिवार के रिश्ते से बहन तो लगती ही थीं, परन्तु ऐसी बहनें तो गाँव में और भी बहुत सी थीं। माजी का अधिक निकट का सम्बन्ध बसंती बुआ जी से एक सहेली के रूप में था।

दोनों का बचपन साथ-साथ बीता था। दोनों ने एक दूसरी के हृदय को परखा और आपस में प्रेम और सहानुभूति के रूप में मिलाया था।

माजी बोलीं, "बेटा ! तुम चले आये, यह तुमने बहुत अच्छा किया इस समय। पता नहीं क्यों आज दिन में बसंती ने तुम्हें कई बार याद किया था। तुम न आते तो वह यही समझती कि तुम्हारा उसके प्रति स्नेह ही नहीं है।"

मैं माजी की बात सुनकर बोला, "माजी ! स्नेह तो बसंती बुआ जी का है मुझ पर। उन्हीं का स्नेह तो मुझे तुरन्त खींच लाया। पत्र को पढ़ कर मैं एक क्षण के लिए भी बैठा न रह सका।"

माजी मेरी खाट पर ही आकर मेरे पास बैठ गईं। इस समय उनके दिल और दिमाग पर बसंती बुआ जी छाई हुई थीं।

वह धीरे-धीरे बोलीं, "बेटा ! बसंती मेरी बचपन की सहेली है। यों बहन भी है वह मेरी, परन्तु बहन तो इस प्रकार की और भी न जाने कितनी भरी पड़ी हैं गाँव में।

बसंती का दिल बड़ा स्वच्छ है, इतना स्वच्छ जैसा साफ़-सुथरा शीशा। उसमें मेरे लिए छिपाने को कुछ है ही नहीं मानो। अपने दिल की रत्ती-रत्ती बात यह मुझ से कह देती थी और सच बात यह है बेटा ! कि मैंने भी कभी इससे कुछ नहीं छिपाया।

यह मेरे दुःख-दर्द की साथिन रही है।

जिस तरह बसंती की माता जी का स्वर्गवास उस समय हो गया था, जब यह बहुत छोटी थी, उसी प्रकार मेरी माता जी भी मुझे बच्ची ही छोड़ कर स्वर्ग सिधार गई थीं। उसके पश्चात् यह मेरे जीवन का सहारा रहीं और मैं इसके।

बसंती ने जीवन में बड़े-बड़े कष्ट उठाये हैं बेटा ! और वह इस लिए नहीं कि इसके घर में किसी प्रकार की कमी थी, केवल इसलिए कि इसकी माँ मरते समय रिसालसिंह और मानसिंह के हाथ इसके हाथ में थमा गई थी। इसने अपनी माँ की आत्मा को शांति प्रदान की है।"

मैं बोला, "यह सब मुझे आज सुनाया था बसंती बुआ जी ने।"

"कब ?" आश्चर्य चकित होकर माजी ने पूछा।

मैं बोला, "अभी संध्या को, जब आप वहाँ से चली आईं, तो वह अपने पुराने जीवन की कहानी ही मुझे सुनाती रहीं। बुआ जी का जीवन वास्तव में बड़ा त्यागमय रहा है। उन्होंने अपने भय्यों के लिए जो बड़ा त्याग किया है, वह बहुत ही आदर्श वस्तु है। वरना विवाह होने के पश्चात लड़कियाँ अपनी ही घर-गृहस्थी में इतनी फँस जाती हैं कि उन्हें पीछे की सुधि ही नहीं रहती।"

"यही बात है बेटा ! परन्तु मैं तो बसन्ती से अधिक बसन्ती के पति की सराहना करती हूँ कि जिसने अपना सारा जीवन एक गृहस्थी होते हुए भी तपस्वी जैसा व्यतीत किया।

बहुत ही साधु-वृत्ति पाई थी उन्होंने।" माजी बोलीं।

"इसमें कोई संदेह नहीं माजी !" मैंने उनकी बात का समर्थन किया।

तभी नाना जी आ गये।

वह घूमते-घूमते ही बोले, "लाला ! अब मुझे विश्वास है कि बसन्ती बच जाएगी। बसन्ती को इस समय तीन घंटे हो गये हैं आराम से सोते हुए। पिछले दस दिन से यह सो ही नहीं सकी थी।

यदि दवा काम न करती तो इसे नींद ही नहीं आती।"

नाना जी की बात सुनकर हम सब को हार्दिक संतोष हुआ। माजी के हृदय को अथाह आनन्द की प्राप्ति हुई।

मैंने पूछा, "क्या आप वहीं से आ रहे हैं इस समय ?"

नाना जी बोले, "हाँ बेटा ! मैं पान खाकर उधर ही चला गया था। रिसालसिंह, मानसिंह और दोनों बहुएँ बसन्ती की खाट के पास बैठी थीं।

चारों ने बसन्ती की सेवा में कमाल कर दिया बेटा ! कई दिन हो गये हैं चारों को पलक झँपाये। मैं उन्हें समझाकर आया हूँ कि बारी-बारी से दो-दो आराम करलें। परमात्मा ने चाहा तो बसन्ती की तबियत तुम्हें कल सुबह ठीक मिलेगी।"

मैं बोला, "रिसालसिंह और मानसिंह जैसे भय्यों की बहन होना भी सौभाग्य की बात है नाना जी !"

मेरी बात पर नाना जी मुस्करा कर बोले, "तुम ठीक कह रहे हो बेटा ! लेकिन बसन्ती जैसी बहन का भाई होना भी कुछ कम सौभाग्य की बात नहीं है। बसन्ती लड़की नहीं है बेटा ! एक देवी है।"

माजी बोलीं, "बेटा ! यह जीवन बड़ा ही विचित्र ढंग से चलता है। कभी-कभी खिले हुए फूल एक क्षण में डाल से टूट कर ज़मीन पर गिर पड़ते हैं और कभी कुम्हलाती हुई कलियाँ खिल उठती हैं। एक-से-एक अजीब मोड़ आता है इस जिन्दगी में।

बसन्ती के जीवन में भी कई मोड़ आये।

जब यह पैदा हुई तो इसके दोनों चचाओं ने अंग्रेज़ी बाजा बजवाया और दावत की सारे कुनबे की।

यह इतनी भाग्यवान निकली कि दो भाइयों की चोटियाँ पकड़कर लाई इस परिवार में। माँ, बाप, दो चचा और दो भाइयों की लाडली बन गई। अकेली ही दुलारी लड़की बनकर आई यह इस परिवार में।

किसी को क्या पता था उस समय कि जितना घना दुलार यह अपने आँचल में समेट कर लाई थी, उतना ही बड़ा उत्तरदायित्व भी इसे निभाना होगा। उस लाड का इसे कितना मूल्य चुकाना होगा, यह कोई नहीं जानता था उस समय।

जब तक यह आठ वर्ष की हुई इसे दुनियाँ की कुछ भी सुधि नहीं थी। हम दोनों इसी आँगन में मौज के साथ खेलते-कूदते और नाँचते-गाते थे। कभी दोनों यहीं रोटी खा लेते थे और कभी बसन्ती के घर।

अचानक इसकी माँ ऐसी बीमार हुई कि खाट पर ही पड़ गई। घर का सारा भार एकदम बसन्ती के सिर पर आ गया।

इस भार में दबे-ही-दबे इसका विवाह भी हो गया, परन्तु विवाह के पश्चात् एक वर्ष में ही इसके माता-पिता दोनों किनारा कर गये। भगवान् ने दोनों को उठा लिया।

छोटे-छोटे, दुनियाँ से अनभिज्ञ, दो भाई रह गये।

तब बसन्ती स्वयँ माँ बन गई इस घर की।

इस परिवार और इसकी मान-मर्यादा को बसन्ती ने गहरे भँवर में डूबते-डूबते बचाया। बसन्ती न होती तो उस भयंकर भंवर से इसे कोई नहीं निकाल सकता था।

धीरे-धीरे रिसालसिंह और मानसिंह जवान हो गये। दोनों की शादी की और तब जाकर कहीं सन्तोष की साँस ली।

दोनों भय्यों की शादी करने के पश्चात् बसन्ती प्रथम बार अपनी ससुराल में तीन वर्ष रही।

बसन्ती के सास-ससुर का इन्हीं तीन वर्षों में स्वर्गवास हो गया। बसन्ती ने उन दोनों की खूब सेवा की।

बसन्ती अपनी शादी के पश्चात् अधिकांश यहीं रही थी। इस बीच में उसे कभी उनकी सेवा करने का अवसर नहीं मिला था। परन्तु असली सेवा के समय यह वहाँ पहुँच गई।

उस समय बसन्ती ने उस परिवार में माँ का आसन ग्रहण किया। उसीने अपने देवर मनोहर और अपने पति को उस आपत्ति-काल में सांत्वना दी, बल दिया।

बेटा ! सच बात यह है कि बसन्ती दुनियाँ में आई ही माँ बनकर है। इसीलिए तो भगवान् ने इसके सिर पर इतनी जिम्मेदारियों का पहाड़ उठाकर रख दिया।"

कहती-कहती माजी चुप हो गईं। उनकी आँखों के सम्मुख बसन्ती का पूरा जीवन आकर खड़ा हो गया।

वह फिर गम्भीरतापूर्वक बोलीं, "बेटा ! बसन्ती रिसालसिंह, मानसिंह और मनोहर की ही माँ नहीं बनी। इसे मैं भी अपनी माँ का ही दर्जा देती हूँ।

एक बार जब मैं अपनी ससुराल में बहुत बीमार हो गई तो पिता जी मुझे यहाँ ले आये। ठीक एक वर्ष तक मेरी बीमारी चली थी। मेरी उस बीमारी में बसन्ती ने मेरा जो काम किया वह माँ ही कर सकती थी।

तुम सच जानो कि आज मैं तुम्हारे सम्मुख बैठी हूँ तो केवल बसन्ती की ही बदौलत। वरना उस बीमारी से मुझे कोई नहीं बचा सकता था। पिताजी बेचारे मर्द-मानुस क्या काम कर सकते थे मेरा ?"

पुरानी याद करके माजी की आँखों में आँसू भर आये। वह बोलीं "आज इस बुढ़ापे में मेरा एक सहारा बसन्ती ही है। कल दिन भर मैं यही

सोचती रही कि बसन्ती भी चली गई तो चार घड़ी पास बैठकर समय काटने का सहारा भी उठ जाएगा।"

माजी को रोते देखकर हम लोगों का भी मन भारी हो गया। मैं अपने को सम्भालकर बोला, "नाना जी की आशा-जनक बात सुनकर मुझे तो यह विश्वास होता जा रहा है माजी ! कि बसन्ती बुआजी बच जायेंगी। आप अपने मन को इस प्रकार अशान्त न करें।"

मेरी पत्नी ने भी अपनी माता जी को समझाकर धैर्य बँधाने का प्रयास किया, परन्तु मैं देख रहा था कि उनका हृदय बार-बार सावन के बादल की तरह घुमड़-घुमड़ कर आँखों से पानी बरसा देता था।

इतना कहकर माजी खड़ी हो गईं।

मैंने कहा, "आप खड़ी क्यों हो गईं।"

माजी बोलीं, "मन नहीं मान रहा बेटा ! ज़रा बसन्ती को देख आऊँ।"

उनके मन की उद्विग्नता को देखकर मैं भी उठकर खड़ा हो गया। मैं बोला, "चलिए, मैं भी चलता हूँ आपके साथ।"

मैं और माजी वहाँ पहुँचे तो मामा मानसिंह अपने घेर में को चले गये थे और रिसालसिंह बसन्ती बुआ जी की खाट की पट्टी के पास उकड़ू बैठे थे। बसन्ती बुआ जी सो रही थीं।

मैंने माजी की ओर होठों पर उँगली रखकर न बोलने का संकेत किया और हम दोनों केवल देखकर ही लौट आये।

: ६ :

आज नींद नहीं थी किसी की भी आँखों में। मैंने सोने का प्रयास भी किया, परन्तु नींद आई ही नहीं।

माजी बोलीं, "नींद नहीं आ रही बेटा ! यह चिन्ता ऐसी ही बुरी बला है। जब यह आँखों में जमकर बैठ जाती है तो पलकों को झपने ही नहीं देती।"

मेरे मन में बसन्ती जीजी के आगामी जीवन को जानने की उत्कंठा इस समय उत्पन्न हो रही थी। मैं माजी से बोला, "तो माजी ! जब बसन्ती जीजी ने रिसालसिंह और मानसिंह की शादियाँ करदीं, उसके पश्चात् तो इनके जीवन में कोई चिन्ता नहीं रही होगी। तब तो इनका जीवन सुख और शान्ति के साथ व्यतीत हुआ होगा ?"

मेरी बात सुनकर माजी मुर्झाये चेहरे से मेरी ओर देखकर बोलीं, "बेटा ! इस दुनियाँ में सुख बहुत कम है। यह सच है कि उसके पश्चात् कुछ दिन बसन्ती के जीवन के कुछ दिन बहुत सुखमय व्यतीत हुए, परन्तु बसन्ती का वह सुख भी भगवान् से देखा नहीं गया।" इतना कह कर माजी का कण्ठस्वर रुक गया। मुझे लगा कि मानो उनका हलक सूख गया।

"फिर क्या आपत्ति टूट पड़ी माजी बुआ जी पर।" मैंने पूछा। माजी बोलीं, "बेटा विपत्ति पहले भी बहुत आईं और उन सबका बसंती ने बड़े धैर्य के साथ सामना किया परन्तु यह विपत्ति ऐसी आई कि जिसने इसका जीवन अंधकारमय कर दिया।" इससे अधिक यह और कुछ कह नहीं सकीं।

माजी फिर मेरी पत्नी के साथ उठकर अन्दर चली गईं।

मैं बाँके बिहारी से बोला, "सो गये बाँके बिहारी !"

बाँके बिहारी बोला, "शर्मा जी ! उपन्यास आज तक बहुत पढ़े, परन्तु जो उपन्यास आज पढ़ने को मिला, यह वास्तव में उन उपन्यासों से बहुत भिन्न है जो अब तक पढ़ चुका हूँ। ऐसे सजीव पात्र मेरे सामने अब तक नहीं आये।"

मैं बोला, "मैं तुमसे प्रेम की बात कर रहा था बाँके बिहारी ! अब तुम स्वयँ देखो कि इन पात्रों के जीवन में तुम्हें कहीं प्रेम की पीड़ा दिखलाई देती है या नहीं। ये पात्र किसी के रूपाकर्षण पर आसक्त नहीं होते परन्तु फिर भी इनके दिल बार-बार भर आते हैं। यही

करुणा का प्रवाह तो प्रेम का मूल स्रोत है। तुम जितना ही इसमें डूब-डूब कर गोते लगाओगे तुम्हारी प्रेम विषयक भावना उतनी ही सुथरी बनती जायगी।

यह प्रेम किसी बाहरी आकर्षण से जन्म नहीं लेता। यह जीवन का स्वाभाविक विकास है और कर्त्तव्य की भित्ति पर आधारित है। यही वास्तविक प्रेम है जिसमें प्राप्ति की अपेक्षा त्याग का बाहुल्य है।"

बाँकेबिहारी गम्भीरतापूर्वक बोला, "शर्मा जी ! मैंने आज आपको नीरस कहकर आपके हृदय को ठेस पहुँचाई ! मुझे हार्दिक खेद है, अपने उन शब्दों पर। आपका हृदय कितना कोमल है, इसका अनुमान मैं आज लगा पाया हूँ।"

मैं मुस्करा कर बोला, "आज मैं तुम्हें इसलिए नहीं लाया हूँ यहाँ कि तुम यह अनुमान लगाओ कि मेरा हृदय कितना कोमल है। यहाँ तो तुम्हें यह देखना है कि बसंती जीजी का हृदय कितना कोमल है, कितना स्वच्छ है और कितना त्यागपूर्ण है।"

रात्रि के पिछले प्रहर में आकर मुझे कुछ नींद आई। बाँके बिहारी पहले सो गया था।

प्रातःकाल उठकर हम लोग बाग में घूमने चले गये। वहाँ से लौटे तो माजी ने चाय बना ली थी और आलू की पकौड़ियाँ भी बनाई थीं मेरी पत्नी ने, क्योंकि वह जानती है कि मैं चाय के साथ पकौड़ियाँ बड़े स्वाद से खाता हूँ।

मैं बाँकेबिहारी से बोला, "यहाँ टोस्ट नहीं मिलेगा तुम्हें। हाँ मक्खन मिल सकता है। चाहो तो पकौड़ियाँ और मक्खन खाओ।"

मेरी बात सुनकर बाँके बिहारी बोला, "आप भी शर्मा जी खूब मेल मिलाते हैं। पकौड़ी और मक्खन का क्या मेल ?"

मैं हँसकर बोला, "भाई मेल बनाना तो अपने हाथ की बात है। ये मेल कहीं से बनकर तो नहीं आते।" और इतना कहकर मैंने

पकौड़ी पर मक्खन उठाकर उसे मुँह में रख लिया। फिर मैं बोला, "देखा तुमने। मक्खन और पकौड़ी का कितना सुन्दर मेल हो गया।"

मेरी बात सुनकर सब लोग मुस्करा दिये।

माजी मेरी बच्चों जैसी सरल बात सुनकर गद्‌गद् हो उठीं। वह बाँके बिहारी से बोलीं, "बेटा ! यह तो ऐसा ही लड़का है। जो दे-देती हूँ उसे खा लेता है। न कभी इसने मेल देखा और न कभी बेमेल।"

चाय पीकर मैं और बाँके बिहारी बसंती बुआ जी की ओर चले गये।

बुआजी चुपचाप लेटी हुई थीं खाट पर।

मुझे देखकर बोलीं, "आ जाओ बेटा ! इस पास वाली खाट को खींच कर बैठ जाओ मेरे पास।"

मैंने पूछा, "अब तबियत कैसी है आपकी ?"

बसंती बुआजी बोलीं, "आज कुछ ठीक सी लग रही है बेटा ! चाचा जी आये थे अभी-अभी। नब्ज़ देखी थी उन्होंने। कह रहे थे कि ज्वर नहीं है अब।"

बुआ जी की बात सुनकर मुझे हार्दिक संतोष हुआ।

मैं बोला, "कल तो आप की दशा देख कर मैं डर ही गया था बुआ जी ! आप इतनी दुर्बल हो गई होंगी, इसकी तो मुझे स्वप्न में भी सम्भावना नहीं थी।"

बुआ जी बोलीं, "कल मेरी दशा बहुत खराब थी बेटा ! मुझे अपने बचने की तनिक भी आशा नहीं थी। परन्तु अब लगता है कि मैं बच गई।

मौत नाहक भी मुझे आकर भी छोड़ गई बेटा ! ले ही जाती तो अच्छा था। पता नहीं जीवन में और क्या कष्ट देखने शेष रह गये हैं, जो वह छोड़ गई।"

बुआ जी के उदास चेहरे को देख कर मैं बोला, "ऐसी बात न

कहो बुआ जी ! आपके साये में हम सब बच्चे क्या सुख अनुभव नहीं कर रहे हैं ? आप इतनी निराश होकर हमारा सुख हम से क्यों छीन लेना चाहती हैं ।"

मेरी बात सुन कर बुआ जी के चेहरे पर मुस्कराहट की एक रेखा खिंच गई । वह बोलीं, "बेटा ! तुम बच्चों के स्नेह के बल पर ही तो मैं इस जीवन के भार को आज तक ढोती चली आ रही हूँ । वरना पता नहीं मेरा क्या होता ?" इतना कह कर वह चुप हो गईं ।

मैं बोला, "बुआ जी कल आपने अपने बचपन की कहानी सुनाई थी मुझे । आपके साहस और कर्मठता की कहानी सुन कर मुझे बहुत प्रसन्नता हुई । नानी जी और नाना जी की मृत्यु के पश्चात आपने जो त्याग किया वह मेरी दृष्टि में आदर्श है ।"

बुआ जी मुस्करा कर बोलीं, "उस में त्याग क्या था बेटा ! मैं न करती तो और कौन आता करने के लिए । सिर पर जब जैसी भी विपत्ति आ पड़ती है, उसे सहन करना ही पड़ता है । उसे रोकर सहन करो तब भी सहन करनी पड़ती है और हँस कर सहन करो तब भी सहन करनी पड़ती है ।"

मैं बोला, "तो मामा जी रिसालसिंह और मानसिंह की शादी के पश्चात् तो फिर आप का जीवन सुखमय हो गया होगा ?"

बुआ जी मुस्करा कर बोलीं, "सुख मेरे जीवन में स्वप्न के समान आया है बेटा ! उस की झाँकियाँ तो मैंने अवश्य देखी हैं परन्तु वह स्थायी नहीं रह सका । परमात्मा ने उन झाँकियों को बहुत थोड़ी आयु देकर भेजा और दुःख को बहुत लम्बी आयु देकर । मैं जीवन भर लड़ती-झगड़ती रही हूँ दुःख से परन्तु जीत नहीं पाई । अन्त में मैंने मुस्करा कर उसे ही अपनी छाती से लगा लिया और कह दिया उससे कि वह अपनी करनी से बाज़ न आये ।

यह ज़िन्दगी बेटा कई बार मुस्कराई और कई बार मुर्झाई है। इस खिलने और मुर्झाने में ही ये बाल पक कर सफ़ेद हो गये।

मानसिंह और रिसालसिंह की शादी करके मैं अपनी ससुराल गई और इस बार पूरे तीन वर्ष रही वहाँ।

एक दिन मेरी सास को हल्का-हल्का सा ज्वर हो गया। थोड़ी पीड़ा भी थी उनके माथे में।

मैंने पूछा, "आज कैसा जी है माजी !"

वह बोलीं, "कुछ नहीं बहू ! कुछ हड़कल सी हो रही है सारे बदन में। बुखार सा लग रहा है।"

वह चूल्हे पर बैठी खाना बना रही थीं। मैं बोली, "आप उठकर खाट पर लेट जायें। खाना मैं बनाऊँगी।" मैंने बड़ी कठिनाई से उन्हें उठा कर खाट पर बिठाया।

वह हँस कर बोलीं, "बावली ! मुझे कोई ऐसी तकलीफ़ नहीं है कि खाट पर लेट जाऊँ। मुझे खाट पर लेटी देखेंगे तो तेरे ससुर दुःखी होंगे। मुझे बैठी रहने दे, लेटने को मत कह।"

मैं बोली, "आप लिहाफ़ ओढ़ लें। निघास आने पर बदन के दर्द में आराम होगा। आप रात को देर तक ठंड में फिरती रहीं, इसी लिए यह दर्द हो गया है।"

वह खाट पर बैठ गईं। तभी तुम्हारे फूफा जी आ गये। वह बोले, "माँ ! आज खाट पर कैसे बैठी हो इस तरह ?"

वह बोलीं, "ऐसे ही बिठला दिया मुझे बहू ने। कुछ बदन में दर्द सा था मेरे। बहू ने काम ही नहीं करने दिया।"

तुम्हारे फूफा जी अपनी माता जी के पास ही खाट पर बैठ गये और उनका हाथ अपने हाथ में लेकर देखते हुए बोले, "माँ ! बुखार हो गया है तुम्हें। मैं वैद्य जी को लाता हूँ बुला कर।" और वह तुरन्त खड़े हो गये।

वह बोलीं, "तुम दोनों ही पगले हो गये मालूम देते हो मुझे। ऐसा बुखार क्या आज ही पहली बार आया है मुझे ? मैं दवा नहीं खाऊँगी किसी वैद्य की। मैंने आज तक कभी जीवन में कोई दवा नहीं खाई।"

परन्तु वह रुके नहीं और थोड़ी ही देर में वैद्य जी को अपने साथ लेकर आ गये।

वैद्य जी देख ही रहे थे कि तभी मेरे ससुर आ गये। यह सब देखकर वह बोले, "दयाराम ! क्या बात है रे ?"

यह बोले, "कुछ नहीं पिता जी ! माँ को जरा बुखार हो गया। मैं वैद्य जी को लया हूँ दिखलाने के लिए।"

वह आश्चर्य से बोले, "बुखार ! बुखार कैसे हो गया ? ठण्ड खा गई होगी यह। कई बार कह चुका हूँ कि रात को ठण्ड में काम न किया कर, लेकिन यह है कि सुनती ही नहीं। यह समझती है कि अभी इसके बदन में उतनी ही जान बनी हुई है, जितनी पहले थी।"

माजी लजा-सी गई पिता जी की बात सुनकर और तुम्हारे फूफा जी से बोलीं, "दयाराम ! तूने नाहक यह बखेड़ा खड़ा कर दिया। मैं मना नहीं कर रही थी तुझे वैद्य जी को बुलाकर लाने के लिए।"

वह हँस पड़े उनकी बात सुनकर और बोले, "पिता जी तुम्हारे रात-बिरात काम करने पर नाराज़ हो रहे हैं। वह मुझ पर नाराज़ नहीं हैं कि मैं वैद्य जी को क्यों बुला लाया।"

यह बीमारी कुछ ऐसी बढ़ी बेटा ! कि सम्भाले नहीं सम्भली। क्या साधारण सा बुखार, वबाल हो गया उनकी जिन्दगी पर और एक दिन उनके प्राण लेकर ही टला।

उनकी मृत्यु का पिता जी के जीवन पर बहुत गहरा प्रभाव पड़ा। उनके बाद वह जितने दिन भी जिये, बस जीते ही रहे, उत्साह उनके अन्दर का एक दम सूख गया था।

एक वर्ष के अन्दर-ही-अन्दर उनका शरीर बहुत दुर्बल हो गया। हमने उनकी सेवा में कोई कमी नहीं छोड़ी, परन्तु वह शान्ति हम उन्हें प्रदान नहीं कर सके, जो माता जी के जीवन से उन्हें प्राप्त थी।

एक वर्ष के अन्दर-ही-अन्दर ये दोनों व्यक्ति हम से विदा हो गये। घर भर की ज़िम्मेदारियाँ तुम्हारे फूफा जी के सिर पर आ गईं।

तुम्हारे फूफा जी गाँव से चार कोस दूर एक स्कूल में पढ़ाते थे। घर का काम-काज मनोहर देखता था।

मुझे भगवान् ने दो बच्चे दिये, एक लड़की और एक लड़का।

मैं बहुत खुश थी अब। यह मेरे जीवन का सुनहला समय था, ठीक वैसा ही सुनहला जैसा मैंने अपनी माँ की बीमारी से पूर्व देखा था। तब मैं अबोध थी और अब समझदार।

ये बातें चल ही रही थीं कि तभी मामा जी रिसालसिंह आ गये। बुआ जी को इस प्रकार मुझ से बातें करते देखकर बोले, "भय्या! मुझे तो लगता है तुमने ही आकर जीजी को जिला लिया। कल जब तुम आये थे तो इनके बचने की मुझे कोई आशा नहीं रही थी। मैं हकीम जी के पास दौड़ा जा रहा था उस समय।"

"मैंने देख लिया था आपको। रोक कर कुछ पूछना उचित नहीं समझा उस समय।" मैं बोला।

"भय्या! कुछ ऐसा तूफ़ान-सा आया पिछले दिनों कि मुझे होश ही नहीं रही अपनी। हकीम जी ने एक से एक लाजवाब दवा दी, परन्तु किसी ने काम ही नहीं किया। एक-एक दिन में तीन-तीन बार मुझे मोदीनगर जाना पड़ा। मैं पागल-सा हो गया।

कल शाम जो दवा हकीम जी ने दी, उसका बहुत असर हुआ। पिलाते ही जीजी को नींद आ गई।

कई दिन में आज ज़रा शान्ति मिली है चित्त को।" मामा रिसाल-सिंह बोले।

मामा जी कुछ देर बैठकर चले गये। तभी माजी आ गईं वहाँ।

वसन्ती जीजी बोलीं, "चमेली ! आजा बीबी ! आज मेरा जी ठीक है। पर बदन ऐसा हो गया है कि मानो जान है ही नहीं जरा भी इसमें।

आज दसियों दिन हो गये अन्न-जल के दर्शन किये। खाट में पड़े-पड़े कमर दुख रही है।"

माजी बोलीं, "बसन्ती ! तूने तो हम सबके तलवों के नीचे से ज़मीन ही निकाल दी। कल तेरी दशा बहुत खराब थी। जब लाला तुझे देखकर घर गया तो बहुत रोया।"

बसंती बुआजी मेरी ओर देखकर बोलीं, "पगला कहीं का। अरे रोने की क्या बात थी इसमें ? आखिर मैं क्या कुछ अमर पट्टा लिखा कर लाई हूँ भगवान् के घर से। जिन्हें मुझ से पहले नहीं मरना चाहिए था, जब वे ही नहीं रहे तो मेरा क्या है ? मैं तो व्यर्थ जी रही हूँ अब। सच यह है कि मुझे आज से बहुत पहले मर जाना चाहिए था।

परन्तु जिस प्रकार जीना अपने हाथ की बात नहीं, उसी प्रकार मरना भी उसी के हाथ में है।"

माजी आँखें तरेर कर बोलीं, "क्या पागल हो गई है बसंती ? बच्चों के सामने ऐसी निराशा भरी बातें नहीं करनी चाहिएँ। तू क्यों मरेगी अभी ? जब मैं बीमार-सीमार इतने दिल से इलझी हुई हूँ, तो तू अच्छी खासी क्यों मर जायेगी ?"

माजी की बात सुनकर बसंती बुआ जी मुस्करा कर बोलीं, "तो ले मैं नहीं कहती कुछ भी चमेली ! जो बात तुझे अच्छी नहीं लगतीं वे मैं क्यों कहूँ ?"

मैं बोला, "कल माजी बहुत दुःखी थीं बुआ जी ! मैंने प्रथम बार इन्हें जीवन में इस प्रकार रोते देखा था। यह रो-रो कर मुझे तसल्ली

देने का प्रयास कर रहीं थीं। मुझे रोने को मना कर रही थीं और इनका अपना रोना बन्द नहीं हो रहा था।"

तभी नाना जी आ गये। वह बसंती बुआ जी की ओर देखकर मुस्कराते हुए बोले, "बसंती कैसा जी है अब ?"

बसंती बुआ जी मुस्करा कर बोलीं, "आपने बचा ही लिया अपनी बेटी को चाचा जी ! वरना मैंने तो पूरी-पूरी तय्यारी कर ली थी।"

"पगली कहीं की ! कल तू ऐसी घबराई कि तूने मेरे भी हाथ-पैर फुला दिये। एक बार मुझे भी ऐसा ही लगने लगा कि अब नहीं बचेगी, लेकिन वह रात जो दवा दी तुझे, उसके असर को देखकर मुझे रात ही विश्वास हो गया था कि अब मर नहीं सकती।

तसल्ली मैं दे गया था मानसिंह को, लेकिन दिल मेरा भयभीत ही था।

अब फिर गंगा स्नान की बात न सोच बैठना। कहीं फिर इस बुढ़ापे में मेरी जान को मुसीबत खड़ी करे।"

बसंती बुआजी बोलीं, "चाचा जी ! लड़कियाँ पैदा करके आप मुसीबतों से कहाँ तक बचेंगे ? और जब तक आप सिर पर हैं तब तक हमसे ग़लतियाँ भी होती ही रहेंगी।

वैसे गढ़मुक्टेश्वर न जाती तो सचमुच बीमारी इतनी न बढ़ती। जिस दिन मैंने गंगा-स्नान किया, उस दिन भी मुझे कुछ ज्वर था। और नहाने के बाद तो जैसे सारा वदन आग के तपे अंगारे के समान दहक उठा।"

मैं और बाँके बिहारी नाना जी के साथ-साथ उठकर चले आये। माजी वहीं बैठी रह गईं।

: १० :

संध्या तक बुआजी की तबियत ने और तनिक उभारा लिया । मैं संध्या को उनके पास गया तो वह प्रसन्न थीं ।

मैं उनके पास ही दूसरी खाट पर बैठ गया । बाँके बिहारी भी मेरे पास ही बैठा था ।

मैं बहुत बार इस गाँव में आया था और लगभग हर बार मेरी बसंती बुआ जी से भेंट होती थी, खूब बातें होती थीं इधर-उधर की, परन्तु उनके अपने परिवारिक जीवन के विषय में कभी कोई विशेष बात नहीं हुई थी ।

एक बार मेरी पत्नी ने उनके घर के विषय में, मामा जी मानसिंह और रिसालसिंह के विषय में कुछ बतलाया था । तभी से मेरे मन में उनके पारिवारिक जीवन में प्रवेश करने की उत्कंठा उत्पन्न हुई थी ।

मैं बोला, "बुआ जी ! सुबह आप सुना रहीं थीं कि फिर आप का सुखमय पारिवारिक जीवन चल निकला ।"

मेरी बात सुनकर बुआजी को पूरी बात याद आ गई । वह बोलीं, "चल क्या निकला बेटा ! कुछ चला, और चल भी न सका ।"

मनोहर कितना अच्छा लड़का था, कितना प्यार करती थी मैं उसे, लेकिन वह एकदम बदल गया ।

ऐसा परिवर्तन मैंने आज तक किसी में नहीं देखा । शायद उसकी बहू ने उसका मन मेरी और तुम्हारे फूफा जी की ओर से ऐसा फेर दिया कि उसने हमसे बोलना ही बन्द कर दिया ।

यह सब देख कर मैं एक दिन बहुत रोई । रोते-रोते मेरी आँखें सूज गईं । संध्या को तुम्हारे फूफा जी आये और मेरी यह दशा देखी तो वह घबरा कर बोले, "बसंती ! क्या बात है ? सच-सच बता; तुझ से मनोहर या उसकी बहू ने तो कुछ नहीं कहा ।"

मैं डबडबाये नेत्रों से उनकी ओर देख कर बोली, "कहा तो कुछ

नहीं, लेकिन मनोहर ने मेरा दिल तोड़ दिया। मैंने उसे आज तक बेटे की तरह समझा और उसने मेरे प्यार को ठोकर से ठुकरा दिया।"

वह यह सुनकर, हँस कर, बोले, "पगली ! यह तो दुनियाँ है। जब मैं ही कभी इसके विषय में नहीं सोचता, तो तू क्यों बावली हो रही है ? कभी समझेगा तो समझ जायगा और न समझेगा तो यह जाने। मैंने कोई भूल नहीं की, तूने कोई भूल नहीं की, फिर हम क्यों इसके लिए दुखी हों !"

तभी दुलारे बाहर से खेलता हुआ चला आया। दुलारे और दुलारी, ये दो बच्चे दिये थे मुझे भगवान् ने। अधिक की मैंने इच्छा भी नहीं की। इन्हीं दो बच्चों पर संतोष करके हम दो प्राणी प्रसन्नता के साथ अपना जीवन व्यतीत कर रहे थे।

दुलारे अब अपने पिता जी के पास स्कूल में पढ़ने लगा था और बड़ा ही तीव्र बुद्धि का लड़का था।

आज संध्या को जब उसके पिता जी ने घर में प्रवेश किया तो दुलारे उनकी गोद में था।

मैंने आगे बढ़कर दुलारे को अपनी गोद में ले-लिया। उसका बदन जल रहा था और बुखार बहुत तेज़ था।

रात-रात में बुखार और भी तेज हो गया। वैद्य जी की दवा दी, परन्तु बुखार उतरा नहीं।

दूसरे दिन दुलारे के बदन पर माता निकल आई।

बड़ी भयानक माता थी बेटा ! जब उसकी याद आ जाती है तो रोंगटे खड़े हो जाते हैं।

ग्यारहवें दिन दुलारे हमें छोड़ कर चला गया।"

"ऐं !" मेरे मुख से घबरा कर निकला।

बसंती बुआ जी की आँखों में भी पानी भर आया। वह किसी तरह अपने को सँभाल कर बोलीं, "बेटा ! मैंने अपने जीवन में सुख की कल्पना करने का जो स्वप्न देखा था, उसे पानी के बुलबुले के समान

विधाता ने फोड़ दिया। केवल ग्यारह दिन में ही मेरे आशा के संसार को अंधकारपूर्ण कर दिया।

जिस दिन दुलारे की मृत्यु हुई उसी दिन दुलारी को भी ज्वर ने पकड़ लिया। दुलारी को भी ठीक वैसी ही माता निकली और वह सातवें ही दिन परलोक सिधार गई।

इस प्रकार मेरे और तुम्हारे फूफा जी का जीवन निराशा के गहन गर्त में डूब गया।

बेटा ! जीवन का उत्साह समाप्त हो गया।

हम दोनों पर इतना बड़ा आपत्ति का पहाड़ टूटा, परन्तु मनोहर नहीं आया हमारे पास।

वह सामने से निकला चला गया। मैं रोती हुई खड़ी रह गई। वह बोला नहीं एक शब्द भी।

मैं समझ न सकी कुछ भी। आखिर यह वही तो मनोहर था जिसने रथ में बैठकर मुझ से कहा था, "भाभी तुम रोना बन्द नहीं करोगी तो मैं भी रोने लगूँगा। मैं वही बसंती तो हूँ। मेरा तब का रोना, आज के रोने से सर्वथा भिन्न था।

उस रोने में कुछ मिठास भी था, कुछ पीड़ा थी तो कुछ आनंद भी था। उस दिन मुझे देख कर द्रवित होने वाले इन्सान पर आज कुछ भी प्रभाव नहीं पड़ा, यह विचित्र बात थी मेरे लिए।"

अब हम केवल दो ही प्राणी रह गये।

इस बीच में रिसालसिंह और मानसिंह कई बार मुझे लेने के लिए गये, परन्तु मैंने स्पष्ट इंकार कर दिया। मैंने इन्हें समझा कर कहा, "देखो भय्या ! जब तुम्हें मेरी आवश्यकता थी तो मैंने इनका ध्यान तक भी न किया और आज इन्हें मेरी आवश्यकता है तो मैं वहाँ नहीं जा सकती। इन्हें अकेले छोड़ कर मैं कहीं नहीं जाऊँगी।"

रिसालसिंह संध्या को घर से बाहर जा रहा था तो मनोहर ने

उस से आँखें बचाकर निकल जाना चाहा, परन्तु रिसालसिंह ज़ोर से बोला, "अरे मनोहर ! आखिर मुझ से क्यों छिपने की कोशिश करते हो तुम ? मेरे तो यार हो न तुम ? मैं रिश्तेदारी की चिंता नहीं करता ज़रा भी ।"

मनोहर रुक गया रिसालसिंह की बात सुनकर । वह बोला, "रिसालसिंह ! अपने घर में सब के साथ रहो। दूसरों के घर पर नज़र डालना अच्छी बात नहीं है ।"

मनोहर की बात रिसालसिंह के कलेजे में तीर की तरह लगी। वह घायल हिरन की तरह तड़फड़ा उठा । इसने क्रोधपूर्ण दृष्टि से मनोहर के चेहरे पर देखा और केवल इतना ही कहा, "मैंने भूल से तुम्हें पुकार लिया मनोहर ! परन्तु जिस मनोहर को मैंने पुकारा था वह तुम नहीं हो ।" और इतना कहकर रिसालसिंह ने मुँह मोड़ लिया उसकी ओर से ।

रिसालसिंह संध्या तक रुका अपने जीजा जी से मिलने के लिए। संध्या को वह आये तो बड़े थके हुए थे ।

मैंने खाट बिछादी उनके बैठने के लिए ।

वह बैठकर रिसालसिंह से बोले, "घर पर सब कुशल है। मानसिंह अच्छी तरह है ना ?"

"सब कुशल हैं जीजा जी ! आप तो हमें भूल ही गये बिल्कुल । कभी एक फेरा उधर को भी मार लिया करो तो हमारा भी जी कुछ और सा हो जाया करे ।" रिसालसिंह बोला ।

"यह तो तुम ठीक कह रहे हो रिसालसिंह ! लेकिन क्या कहूँ तुमसे कि दुलारे और दुलारी ने जाकर मुझे कितना अशक्त कर दिया है । अब मुझे लगता है कि मानो मेरे अन्दर जान ही नहीं रही है ।

चल अवश्य रहा है यह शरीर, परन्तु एकदम बिना प्रयोजन ।

बसन्ती का सहारा इस समय न होता तो सच जानो तुम ये हड्डियाँ कभी की बिखर गई होतीं।" वह दर्द-भरे स्वर में बोले।

रिसालसिंह ने भारी स्वर में कहा, "जीजा जी! आघात तो वास्तव में बहुत ज़बरदस्त हुआ है आप पर। यहीं पर तो आकर मनुष्य लाचार हो जाता है। विधाता की करनी में फेर-बदल करना इंसान की ताकत से बाहर की बात है। वह जैसे भी रखे, उसी में खुश रहना चाहिए आप को।"

रिसालसिंह की बात सुनकर उसके जीजा जी मुस्करा कर बोले, "रिसालसिंह! खुश रहो तब भी वही बात है और रो-पीटलो तब भी वही है। जीवन जितना है वह काटा ही जाएगा और कट ही रहा है, परन्तु इसका अब अर्थ तो कुछ भी नहीं रहा।"

मैंने फिर रिसालसिंह से चमेली के विषय में पूछा।

चमेली का नाम सुनकर रिसालसिंह बोला, "चमेली गाँव में ही है और अब लग रहा है कि वह अपनी ससुराल में कभी नहीं जाएगी।"

"क्यों?" मैंने आश्चर्य चकित होकर पूछा।

रिसालसिंह की त्योरी चढ़ गई थी इस समय। वह गम्भीरतापूर्वक बोला, "जीजी! ज़लील आदमियों की दुनियाँ में क्या आप समझती हैं कि कुछ कमी है?"

इससे अधिक रिसालसिंह ने और कुछ नहीं कहा, परन्तु मैं देख रही थी इसके चेहरे को कि उस पर बड़ी पीड़ा छा गई थी।

मुझसे रहा नहीं गया यह सुनकर। मैं रिसालसिंह को झँझोड़कर बोली, "कुछ हुआ भी। मुझे बतला तो सही कि क्या हुआ?"

वह बोला, "हुआ क्या? उन्होंने दूसरी शादी कर ली।"

"किसने? राजबाला के पिता जी ने?"

रिसालसिंह बोला, "हाँ ! और धोखे से चमेली की चीज़-वस्त भी अपने कब्ज़े में कर लीं।"

"क्या ?" आश्चर्य के साथ तुम्हारे जीजा जी बोले, "बड़ी ही नीच प्रकृति के आदमी निकले।" वह सन्न से रह गये यह बात सुनकर। उनका मन बेचैन-सा हो उठा।

इस बात को सुनकर मुझे भी हार्दिक कष्ट हुआ। मेरे मुँह से निकला, "आदमी किसका विश्वास करे ? स्त्री और पति का सम्बन्ध परमात्मा ने असीम विश्वास का बनाया है। चमेली को उसके पति ने भी धोखा दिया। अब किस पर विश्वास करे वह ?"

तुम्हारे फूफा जी मुस्कराकर बोले, "कमाल कर दिया राजबाला के पिता जी ने भी। इस उम्र में शादी करके दूल्हा बने हैं। मेरी तो समझ काम नहीं करती कि इस उम्र में कैसे मौड़ बाँधा होगा उन्होंने अपने सिर पर।" फिर तनिक सोचकर वह बोले, "रिसालसिंह ! यह तुमने बहुत ही दर्दनाक बात सुनाई। चमेली जैसी नेक लड़की के साथ भी यदि कोई व्यक्ति इस प्रकार का व्यवहार कर सकता है, तो वह आदमी नहीं जानवर है मेरी दृष्टि में।"

मैं बोली, "ये काम सचमुच जानवरों के ही हैं रिसालसिंह ! आदमियों के करने के ये काम नहीं हैं।"

चमेली के जीवन की इस घटना को सुनकर मुझसे रहा नहीं गया। तुम्हारे फूफा जी और मैं दूसरे ही दिन रिसालसिंह के साथ यहाँ आये।

मैं चमेली से मिली, तो चमेली मुस्कराकर बोली, "बसन्ती ! जिसके जी में जैसी होती है, वह करने से बाज़ नहीं आता। तेरे जीजा जी ने यह काम धोखे से किया, इस बात का मलाल है मुझे। मुझ से कहकर करते तो क्या मैं मना करती उन्हें ? वह समझ नहीं सके मूझे।"

मैं बोली, "तुझसे पूछने का मुँह नहीं था उनका। अपना काला मुँह तेरे सामने कैसे करते ?"

राजबाला भी उस समय यहीं थी।

तभी चाचा जी बाहर से आ गये। मुझे अचानक यहाँ देखकर बोले, "अरे बसन्ती ! तू कब आई ? राजबाला की शादी में चमेली ने तुझे बहुत याद किया।"

मैं लजा कर बोली, "चाचा जी आती अवश्य, परन्तु राजबाला के फूफा जी की तबियत सँवर ही नहीं सकी। इन्हें अकेले छोड़कर कैसे चलती ? मैं आई नहीं, परन्तु आप सच जानें कि मेरा मन वहीं रहा उन दिनों।"

: ११ :

यहाँ से हम दोनों दूसरे ही दिन लौट चले तो चमेली बोली, "इतनी जल्दी क्या है बसन्ती ? वहाँ तो मनोहर की बहू है ही खाना बनाने के लिए। तू दस-पाँच दिन ठहर कर चली जाती।"

मैं बोली, "चमेली ! मनोहर अब वह मनोहर नहीं रहा है, जिसकी तुझे याद है। घर में कुछ ऐसा वैर का बीज बुआ है कि दोनों भाई एक-दूसरे से पृथक्-पृथक् हो गये।

मुझे मनोहर से ऐसी आशा नहीं थी, परन्तु जब जो चीज़ प्रत्यक्ष-रूप में सामने आ जाये तो फिर आशा बेचारी क्या करेगी ?

मैंने स्वप्न में भी कभी यह नहीं सोचा था कि मेरा बेटा दुलारे और दुलारी ज़मीन पर मरे पड़े रहेंगे और मनोहर उधर मुँह करके भी नहीं देखेगा।"

चमेली खड़ी-की-खड़ी ही रह गई मेरी यह बात सुनकर। मुझे यहाँ आये कई वर्ष हो गये थे और चमेली भी अपनी ससुराल में थी। इस बीच में हम दोनों को एक दूसरी का कोई समाचार नहीं मिला था।

चमेली ने दुलारे और दुलारी के गुज़रने की बात सुनी तो यह माथा पकड़ कर वहीं ज़मीन पर बैठ गई। रोते-रोते पगली हो गई।

इसके रोने से उस दिन फिर मेरे सीने में दुलारे और दुलारी की याद ताज़ा हो गई। मेरा भी कंठ भर आया और आँखें डबडबा आईं।

मैंने सम्भालकर चमेली को ऊपर उठाया और छाती से लगाकर बोली, "कैसी पगली हो गई चमेली ! मुझे और अधिक दुखी न कर। खड़ी हो। तुझे अब अपने पैरों पर खड़ा होना है। मेरा फिर भी कुछ सहारा है, लेकिन भगवान ने तेरा सहारा होते हुए भी छीन लिया।"

चमेली सन्तोष के साथ बोली, "बसन्ती ! जिसका कोई सहारा नहीं होता उसे भी भगवान् कोई-न-कोई सहारा देता ही है। और फिर मेरे तो अभी पिता जी हैं मेरे सिर पर।"

चमेली के सन्तोषपूर्ण उत्तर को सुनकर मुझे बड़ा सन्तोष हुआ। बात बदल कर फिर मनोहर पर आ गई।

मैंने कहा, "अब मैं एक दिन के लिए भी यहाँ नहीं रह सकती। तुम्हारे जीजा जी के जीवन पर मनोहर के इस व्यवहार का बहुत गहरा धक्का लगा है। एक बार को तो यह चलते-चलते लड़खड़ा गये थे।

मनोहर के व्यवहार का धक्का और फिर उस पर दुलारी और दुलारे के छिन जाने का आघात,—दोनों ने इनके दिल को छलनी बना दिया है।

बहन चमेली ! हम दोनों तो अब इस स्थिति में हैं कि न यह मुझे छोड़ सकते हैं और न मैं इन्हें। हम दोनों में शामत उसी की आयेगी जो बाद के लिए बचेगा।" कहकर मेरे चेहरे पर मुस्कराहट नाँच उठी।

मुझे मुस्कराते देखकर चमेली हँसी नहीं, बोली, "ऐसी अशुभ बातें न कर मेरे सामने बसन्ती ! मुझे ये बातें बिलकुल अच्छी नहीं लगतीं।"

मैं मुस्करा कर चमेली से बोली, "चमेली ! यदि मैं तुझसे कहूँ कि

कल मैं और तेरे जीजा जी ! यहाँ केवल तुझसे ही मिलने के लिए आये, तो क्या तू यकीन करेगी ?"

चमेली आँखों में आँसू भर कर बोली, "बसन्ती ! तेरे कल आकर आज लौट जाने की बात देखकर भी क्या मैं अनुमान नहीं लगा सकती ? यदि रिसालसिंह के साथ तू यहाँ रहने को आती तो शायद मैं न भी मानती। रिसालसिंह ने तुझे मेरी ससुराल की घटनाएँ सुनाई होंगी। उन्हें सुनकर तेरा दिल अपनी सहेली के कष्ट में सहानुभूति प्रकट करने को हो आया होगा।

मैं सब कुछ समझती हूँ बसन्ती ! आदमी अकेला आता है और अकेला जाता है। इस संसार में कुछ साथी मिलते हैं। कुछ से वह पैदा होता है और कुछ को वह पैदा करता है। इन सबसे निकट का संबंध होता है। इन में कुछ भले निकल जाते हैं और कुछ बुरे। कुछ साथ देते हैं और कुछ नहीं देते।

अपना-अपना संस्कार है। पति स्त्री का सबसे बड़ा साथी होता है। वह छूटता है या उसे छोड़ना पड़ता है तो इससे बड़ा कष्ट स्त्री के जीवन में और आ ही नहीं सकता।

अपनी सन्तान का अपनी आँखों के सामने गुज़र जाना भी इससे कम कष्टदायक चीज़ नहीं है।

इन मायनों में बसन्ती ! हम दोनों ही बहन अभागी निकलीं।

परन्तु इन्हीं को लेकर बैठी रहें तो जीवन कैसे चले ? जीवन इन सबसे मूल्यवान वस्तु है। उसका जिन परिस्थितियों में भी हो सके उपयोग करना चाहिए और जो सिर पर पड़े उसे सहन करना चाहिए।

यह पिता जी की बतलाई हुई बात है बसन्ती, जो मैं तुम से कह रही हूँ। इस बात ने मुझे बहुत शान्ति दी है; बहुत बल दिया है।

तुम्हारे जीजा जी ने जो कुछ भी किया, वह उसे अपनी होशियारी

समझते होंगे, परन्तु मैं विश्वासघात मानती हूँ उसे। विश्वासघाती व्यक्ति से मेरा क्या सम्बन्ध ?"

उस दिन मैं चमेली की बातें सुनकर दंग रह गई। चमेली को बड़ा ज्ञान है बेटा ! चाचा जी ने उसे बहुत अच्छी-अच्छी पुस्तकें पढ़कर सूनाई हैं। गीता भी सुनाई है।

मैं फिर अपनी ससुराल में आ गई। हम दोनों प्राणी शांति के साथ जीवनबसर कर रहे थे।

घर की जो ज़मीन थी वह सब मनोहर जोतता-बोता था और वह स्कूल-मास्ट्री करते थे।

मनोहर के तीन बच्चे थे और उसके घर का खर्च भी काफ़ी बढ़ गया था, इसलिए हमने कभी ज़मीन की आय में से उससे एक पैसा नहीं चाहा।

समय यूँही निकलता गया। तुम्हारे फूफा जी की नौकरी की अवधि पूरी हो गई। वह रिटायर हो गये।

एक महीना घर पर बैठे ही हो गया। जीवन चलाने का कोई सहारा न रहा। तब यह सोच रहे थे कि मनोहर स्वयँ ही उनसे कहेगा, "भय्या थोड़ी ज़मीन तुम जोत लो।"

जब उसने कुछ न कहा तो एक दिन तुम्हारे फूफा जी ने ही मनोहर से कहा, "मनोहर ! मुझे एक महीने से ऊपर हो गया गाँव में बेकार बैठे। तूने यह नहीं सोचा कि मेरा खर्च कहाँ से चलेगा। कुछ ज़मीन मेरे लिए छोड़ दे तो मैं भी थोड़ी खेती करा लूँ।"

मनोहर बोला, "ज़मीन छोड़ दूँ तो मैं क्या करूँगा ? और उस पर तो मेरी तनाह काश्त दर्ज है एक अर्से से। अब ज़मींदारी नहीं रही है भय्या ! अब तो जो जोत रहा है, ज़मीन उसी की है।"

मनोहर की बात सुनकर वह सन्न से रह गये। मुझ से उन्होंने

एक शब्द भी नहीं कहा, परन्तु यह धक्का उन्हें ऐसा लगा कि जिसे वह सहन नहीं कर सके ।

रात को मेरी आँखें खुलीं तो वह पसीने में तर-बतर पड़े थे। उन्हें होश नहीं था अपना ।

उनकी यह दशा देख कर मैं घबरा उठी ।

वह बौखलाहट में कह रहे थे, "मनोहर ! तू ऐसा तो नहीं था । तू इतना बेईमान कैसे हो गया ? जा तू ही लेले सारी ज़मीन । मैं भूखा ही रह लूंगा । मैं भीख माँग कर खा लूंगा, लेकिन तेरे सामने सवाल नहीं करूंगा ।"

मैं बोली, "यह क्या कह रहे हो तुम ? तुम्हें हो क्या गया है ?"

वह उसी बौखलाहट में हँसकर बोले, "बसंती ! मनोहर कहता है कि हमारी सब ज़मीन उसी की हो गई । मेरा उससे कोई सम्बन्ध नहीं रहा ।"

मैं बोली, "ठीक तो है । मनोहर भी हमारा ही है ।"

"मनोहर हमारा है ! अच्छा बसंती ! तू कहती है तो मैं मान लेता हूँ । तेरी बात को मैं ग़लत नहीं कह सकता....." कहते-कहते उनकी ज़बान ऐंठने सी लगी और उन्हें फिर बहुत ज़ोर का पसीना आ गया ।

मैं भयभीत हो उठी ।

अब दिन निकल आया था ।

मैंने अपने नाई को बुलाया और उसे साइकल पर चढ़ा कर यहाँ से भय्या रिसालसिंह और मानसिंह को बुलाया ।

ये दोनों भय्या दोपहरी ढले से पहले ही वहाँ पहुँच गये । हकीमजी भी इनके साथ थे ।

चाचा जी ने उनकी नब्ज़ देखी । नब्ज़ बहुत मद्धम चल रही थी ।

मैं रोकर बोली, "चाचाजी ! इस बार किसी तरह बचालो इन्हें ।"

मेरी सूरत देखकर चाचा जी की आँखों में आँसू भर आये। यह बोले नहीं एक शब्द भी और घर से बाहर चले गये।

मानसिंह दहाड़े मार कर रो पड़ा। रिसालसिंह रोकर मुझ से लिपट गया। लेकिन बेटा मैं पत्थर-दिल की बन गई उस दिन।

मेरी आँखों में जो आँसू आ भी रहे, उस समय वे भी सूख गये।

गाँव की स्त्रियों ने मेरे न रोने को देख कर विचित्र-विचित्र प्रकार की बातें कहीं, परन्तु मुझ पर उनका कोई प्रभाव न पड़ा।

मैं रो ही न सकी।

उनका दाह कर्म-संस्कार हो गया।

तेरहवीं के दिन ब्राह्मणों को भोजन करा दिया।

उनकी अस्थियों को लेकर मैं स्वयँ रिसालसिंह और मानसिंह के साथ हरिद्वार गई और हर की पैड़ियों पर खड़ी होकर उन्हें गंगा माता को सौंप दिया।

इसके पश्चात् मैं फिर अपनी ससुराल में आई।

दूसरे दिन प्रातःकाल ज्यों ही मनोहर सोकर उठा तो मैं उसके पास जाकर बोली, "बेटा मनोहर ! भय्या तुम्हारे चले गये। अब मैं भी जा रही हूँ। जमीन तुम्हारी हो ही चुकी। यह घर भी तुम्हारा पड़ा है। इसे भी सँभाल लो।"

मनोहर मेरी बात सुन कर ठिठका, उसने अपनी पत्नी की ओर देखा, दोनों की नज़रें मिलीं, और मनोहर चुपचाप गर्दन झुकाये घर से बाहर हो गया।

मैं भी रिसालसिंह और मानसिंह के साथ उसी समय वहाँ से चल दी। अपनी ससुराल को नमस्कार कह दिया।

मैं घर से निकल कर चली तो मुझे घर में से किसी के हँसने की आवाज़ आई।

मैं वहाँ से चुप-चाप चली आई।

यहाँ आई तो दोनों बहुएँ मेरे पैर लगीं। मैं खाट पर बैठ गई।

चमेली ने मेरे आने की बात सुनी तो वह भी लपकी चली आई। अपने जीजा जी की मृत्यु की सूचना पाकर चमेली बहुत दुखी हुई।

वह आकर बहुत देर तक देखती ही रही मेरी ओर।

मैं बोली, "चमेली ! आज अपना वह सहारा भी मैं समाप्त कर आई। भगवान् ने वह भी छीन लिया। लेकिन अच्छा ही हुआ चमेली ! कि परमात्मा ने उन्हें मेरे सामने ही उठा लिया। वरना मेरे बाद उन की ओर देखने वाला भी कोई नहीं था। मेरे तो फिर भी दो भाई हैं।"

मैंने मनोहर का व्यवहार चमेली को सुनाया तो चमेली बोली, "कोई बड़ी बात नहीं है बसंती ! जब पति धोखा दे सकता है तो क्या देवर नहीं दे सकता ?"

तभी नाना जी घेर की ओर से घूमते हुए आ गये। बसंती बुआ जी को मुझ से बातें करते सुन कर उन्हें बहुत प्रसन्नता हुई। वह बोले, "बसंती तबियत अब कुछ ठीक मालूम देती है।"

बुआ जी बोलीं, "इस समय बहुत ठीक है चाचा जी।"

मैं और बाँके बिहारी भी इस समय नाना जी के साथ ही वहाँ से उठ कर चले आये।

: १२ :

आज तीसरा दिन था हमें गाँव में आये। बाँकेबिहारी ने सारा गाँव घूम कर देखा और उसके पास-पड़ौस का जंगल भी देखा।

वह मुझ से बोला, "शर्मा जी, गाँव में गंदगी बहुत है।"

मैं स्वीकार करते हुए बोला, "इसमें कोई संदेह नहीं, परन्तु यह खुली हवा इस गंदगी को स्वयँ साफ़ करती रहती है।

यह गंदगी जो तुम देख रहे हो, यह पहले से बहुत कम है। गाँव के बीचों बीच अब पक्की सड़क बन गई है, वरना पहले यह रास्ता

इतना खराब था कि इस पर कोई सवारी आ ही नहीं सकती थी। बेहद कीचड़ थी यहाँ।

यह सब शिक्षा की कमी है। लोग-बाग अपने काम भी स्वयँ करना पसंद नहीं करते। और जब से देश स्वतंत्र हुआ है तब से तो लोग अपाहज से हो गये हैं। ये समझने लगे हैं कि सब काम सरकार ही करेगी।

ये सोच रहे हैं कि इनके घरों में झाड़ू लगाने भी सरकार ही आयेगी।

जब तक लोग-बागों में अपना काम स्वयँ मिल-जुल कर करने की भावना पैदा नहीं होगी तब तक यह गन्दगी ऐसी ही बनी रहेगी।"

"चाय पीकर हम दोनों बसंती बुआ जी के घर चले गए। वह खाट पर लेटी थीं और मामी जी उनको पंखा कर रही थीं।

हमें देखकर मामी जी उठ खड़ी हुईं और बसंती बुआ जी बोलीं, "आओ बेटा ! बैठ जाओ इस खड़ी हुई खाट को बिछा कर।"

मैंने खाट उनकी खाट के पास ही बिछा ली और बैठकर पूछा, "अब जी कैसा है आपका बुआ जी ?"

"आज मेरी तबियत ठीक है बेटा ! अभी-अभी मैंने एक प्याली चाय पी है। चाय पीकर मेरी आँखें सी खुल गईं और लगा कि मैं सच-मुच अभी इस दुनिसाँ में ही हूँ।" बुआ जी बोलीं।

उनकी बात सुनकर मुझे हार्दिक प्रसन्नता हुई।

मैं बोला, "आज मुझे भी लौटना है बुआ जी ! तीसरा दिन हो गया यहाँ आये। यह पहला ही अवसर है मेरी जिन्दगी का कि मैं यंहा दो रात ठहरा हूँ, वरना काम-काज का कुछ ऐसा झमेला रहता है कि कभी एक रात से अधिक नहीं ठहर सका।"

बुआ जी मुस्करा कर बोलीं, "यह एक दिन अधिक तुमने अपनी इस बुआ के स्नेह को प्रदान किया है बेटा ! तुम्हें देखकर परसों मेरी आत्मा हरी हो गई थी। मेरी आँखें तुम्हें देखने को भटक रही थीं। उस

दिन मैंने कई बार चमेली और राजबाला से तुम्हें चिट्ठी लिखने के लिए कहा था।"

मैं बोला, "बुआ जी इस बार का मेरा यहाँ आना एक असाधारण घटना रही है मेरे जीवन की। आपने अपनी जो कहानी सुनाई है, वह बहुत ही महत्त्वपूर्ण है।"

मेरी बात सुनकर बुआ जी बोलीं, "इसमें महत्त्व की क्या बात है बेटा! मुझ सरीखी दुखिया तो जाने कितनी भरी पड़ी हैं यहाँ। आदमी भाग्य के हाथों में खिलौने के समान खेलता है और भाग्य उस पर मुस्कराता है। आदमी का प्रयत्न ही क्या है? पानी का बुलबुला मात्र है, बालू की दीवार है वह।"

मैं हँसकर बोला, "मैं ऐसा नहीं मानता बुआ जी! भाग्य लोग-बाग उसी को कह देते हैं जो गुजर जाता है। मनुष्य का प्रयत्न बहुत बड़ी चीज़ है। आप प्रयत्न न करतीं तो इस घर की क्या दशा होती, जिसमें आप बैठी हैं? सब आपके प्रयत्न का ही तो फल है।"

मेरी बात सुनकर बुआ जी मुस्करा कर बोलीं, "मेरे किये क्या होता बेटा! यह सब हो गया, क्योंकि इनके भाग्य में ऐसा ही होना बदा था। यही मैं मानती हूँ।"

और इतना कहकर वह सँभल कर करवट लेती हुई बोलीं, "तुझे अपने जीवन की सारी कहानी सुना दी मैंने। अब थोड़ी जो रह गई है उसे भी सुना डालूं। तू जा रहा है आज, फिर पता नहीं कब देखूँ तुझे?"

मैं बोला, "उसे अवश्य सुना डालिए बुआ जी! उसे सुनने की मेरे मन में भी बड़ी उत्कण्ठा है।"

बुआ जी बोलीं, "अब उत्कण्ठा की कोई बात नहीं रह गई बेटा! जीवन निराशा के गर्व में डूब गया।"

मैं यहाँ आ गई। रिसालसिंह और मानसिंह के परिवार में एक

व्यक्ति बढ़ गया। इन दोनों की पत्नियों ने मुझे अपनी सास के समान आदर दिया।

इस घर का प्रेमपूर्ण व्यवहार मेरे हृदय और मस्तिष्क की वह मूल्यवान सम्पत्ति है कि जिसका मूल्यांकन करना मेरे लिए कठिन है।

मेरे संकेत पर उस दिन से आज तक यह परिवार चल रहा है। क्या मजाल जो मेरी आज्ञा के बिना यहाँ पत्ता भी हिलता हो।

मैं यहाँ आई और दूसरे दिन घर से बाहर निकली तो क्या देखा कि ननका उसी चौखट पर बैठा था, जहाँ वह बैठा करता था। बहुत वृद्ध हो गया था। आँखों से दिखाई देना भी कम हो गया था। थोड़ी झाँकली सी पड़ती थी।

मुझे देखकर बोला, "बसंती है क्या ?"

मैं बोली, "हाँ ननका ! मैं ही हूँ।"

"अरी कब आई तू ? मुझे तो पता ही नहीं चला।"

मैं बोली, "कल ही आई हूँ ननका !"

"तेरे घर पर तो सब कुशल-मंगल है।" उसने पूछा।

मैं गम्भीरता पूर्वक बोली, "हाँ ननका ! सब कुशल-मंगल है।"

मेरा यह उत्तर सुनकर वह ज़रा ठिठका और फिर पूछा, "मनोहर के क्या हाल-चाल हैं ? सुना है, दोनों भय्या जुदा-जुदा हो गये हैं।"

मैं हृदय की पीड़ा को हृदय में ही समेट कर बोली, "हाँ ननका ! दोनों बिलकुल अलग हो गये।"

यह सुनकर ननका ने अपना बनावटी गम्भीर मुँह बना लिया और बोला, "दुनियाँ बड़ी खुदगर्ज होती जा रही है बेटी ! भाई-भाई भी आपस में बैरी बन जाते हैं, कैसे दुर्भाग्य की बात है ?

मनोहर बड़ा पगला निकला। पिता-तुल्य अपने बड़े भाई को छोड़कर उसे अलग नहीं होना चाहिए था। मैंने बहुत समझाया था उसे। उसका खयाल है कि तुमने उस घर का पैसा लाकर इस घर में भर लिया। मैंने लाख समझाया उसे, लेकिन उसकी एक समझ में न आई।"

ननका की बात सुनकर मेरा माथा ठनक उठा। मैं समझ गई कि मनोहर को गलत मार्ग पर लगाने वाला यही बदमाश है। परन्तु अब यह समझना भी निरर्थक था।

मैं लम्बा साँस भर कर बोली, "मनोहर ने जो कुछ भी किया, वह ठीक किया ननका ! मुझे उसका ज़रा भी मलाल नहीं है। मैं उसे अपने बेटे की जगह समझती हूँ और जिस तरह अपने बेटे दुलारे को मैं अपनी ससुराल का घर-बार सौंप कर कभी परलोक जाती उसी प्रकार कल सब कुछ उसके हवाले करके आई हूँ यहाँ।

मुझे अब किसी चीज़ की भी इच्छा नहीं है। उस घर की जो धन-सम्पत्ति मैंने इस घर में लाकर भर ली है, उसी को बैठकर खाऊँगी अब आराम के साथ।"

मेरी बात सुनकर ननका आँखें मिचमिचा कर बोला, "क्या सचमुच ही तूने अपने बुढ़ापे का सहारा बना लिया है बसंती ! तूने बहुत अच्छा किया बेटी ! बुढ़ापे में पैसा ही साथ देता है। तू देख ही रही है मुझे इतने दिन से। मेरे पास पैसा न होता तो मक्खियाँ भिनक जातीं मुझ पर।"

मैं बोली, "तुम ठीक कह रहे हो ननका ! पैसे की मेरे पास क्या कमी है ?" कहते-कहते मेरी ज़बान रुक गई। और अधिक झूठ नहीं बोला गया मुझसे। मैं आगे को बढ़ गई।

मैं घेर में पहुँची तो रिसालसिंह बैलों को सानी कर रहा था। मुझे देख कर वह मेरे पास आ गया।

मैंने पूछा, "क्या मनोहर पीछे भी कभी-कभी यहाँ आता रहा है ?"

रिसालसिंह बोला, "कई बार आया है।"

"और ननका के पास बैठ कर गप्पें भी लगाई हैं अकेले में ?"

"हाँ, यह भी हुआ है। बहुत-बहुत देर तक बातें करते रहे हैं दोनों।" रिसालसिंह पिछली बातें याद करके बोला।

मैं गम्भीरता पूर्वक बोली, "तो मनोहर के मस्तिष्क को इसी बद-माश ने विषाक्त किया है। इसने उसके ज़हन में यह कूट-कूट कर भर दिया कि मैं उस घर की दौलत को इस घर में लाकर भर रही हूँ।

यह बात एक दिन मनोहर की पत्नी ने भी मुझ से कही थी। मनोहर का कभी साहस नहीं हुआ यह कहने का, परन्तु मन में उसके यही धारणा है।"

इतना कह कर मैं हँसकर बोली, "चलो होने दो, जो कुछ बात भी जिसके मन में है। अपने को दूसरे के मन से क्या मतलब ? भगवान् तो देखता है। अपना मन साफ़ होना चाहिए।"

रिसालसिंह बोला, "इस तरह की बात मनोहर ने भी मुझ से की थी। सुन कर मुझे बड़ा क्रोध आया जीजी ! मनोहर के अलावा कोई अन्य व्यक्ति होता तो उठा कर ज़मीन पर पटक देता और एक ही घूँसे से उसके दोनों जबाड़े मुँह से बाहर कर देता, परन्तु ख़ून का घूँट पी कर रह गया था मैं उस दिन।"

"तुम ने संतोष से काम लिया, यह बहुत अच्छा किया बेटा ! सच और झूठ को परमात्मा के अतिरिक्त अन्य कोई नहीं जानता, तुम्हारे जीजा जी जानते थे। अब वह भी नहीं हैं इस दुनियाँ में और होते भी तो क्या मनोहर उनका विश्वास करता ?" मैं बोली।

उस दिन इस विषय में अन्य कोई बात नहीं हुई।

समय आगे बढ़ने लगा। दिन गुज़रने लगे। मैं यहीं पर रहती रही। दोपहर तक घर का थोड़ा-बहुत काम करके दोपहर को चमेली के पास जा बैठती थी। हम दोनों ने दो चरखे ले लिए थे और उन्हीं पर बैठी सूत कातती रहती थीं।

चमेली बहुत बारीक सूत कातती है बेटा !"

मैं हँस कर बोला, "इस में कोई संदेह नहीं। मेरे लिए माजी ने

अपने काते सूत की एक चादर बनवाई थी। वह मेरे पास अभी तक है। बहुत अच्छी चादर है।"

एक दिन मैंने मनोहर वाली घटना चचा दीना नाथ को सुनाई तो उन्हें बड़ा दुःख हुआ। वह बोले, "ननका दिल का बड़ा काला आदमी है। दूसरों का घर बिगड़ता है तो इसे आनंद आता है। गाँव में ही इसने कई घरों में इसी प्रकार की बातें करके झगड़ा करा दिया।"

मैं बोली, "चचा तुम एक दिन इससे मीठे बनकर और मेरी बुराई करके कुछ बातें उगलवाने की कोशिश तो करो ?"

इत्तफ़ाक की बात थी कि एक महीने पश्चात् ही एक शादी में मनोहर यहाँ आया और दूसरी पट्टी में चौपाल पर ठहरा।

उस समय तक चचा दीनानाथ ने ननका से बातें करके उस बात की खबर निकाल ली थी।

उन दिनों ननका की आँखें कुछ खराब हो गई थीं और उसने हस्पताल में जाकर पट्टी कराई थी। वह पट्टी बाँधे ही अपनी चौखट पर बैठा रहता था।

चचा दीनानाथ संध्या को उस चौपाल पर गये और मनोहर से मिले। मनोहर उनसे उसी पुराने आदर-भाव से मिला।

चचा दीनानाथ बोले, "मनोहर अपनी भाभी से मिलने नहीं गये। मैं तो समझ रहा था कि तुम वहीं ठहरे होगे।"

मनोहर बोला, "मौसा जी ! बस रहने ही दो तुम इस बात को।"

चचा दीनानाथ बोले, "क्यों, ऐसी क्या बात हुई जो तुम्हारा अपनी भाभी की ओर से इतना मन खट्टा हो गया ? वह तो अभी भी तुम्हें बड़ा प्यार करती है।"

मनोहर बोला, "मौसा जी ! ऊपरी प्यार और चीज है और दिल और चीज है। उनका दिल रिसालसिंह और मानसिंह में है, मुझमें नहीं।"

चचा दीनानाथ बोले, "यह तुमने कैसे जाना बेटा !"

"मैंने कैसे जाना ? आप यह जानना चाहते हैं तो चलिए, उनके पड़ौसी चौधरी ननका सिंह से ही सुनवा देता हूँ आपको कि क्या किया है उन्होंने ?"

ननकासिंह का नाम सुनकर चचा दीनदयाल मुस्करा कर बोले, "बेटा ! ननका को समझना अभी तुम्हारे लिए बहुत कठिन ही है। तुम मुझे क्या ले जाओगे उसके पास, मैं ले चलता हूँ तुम्हें उसके पास। लेकिन बोलना नहीं एक शब्द भी; केवल सुनते ही रहना।" चचा बोले।

मनोहर चचा दीनानाथ के साथ चल दिया।

चचा दीनानाथ ने मनोहर को इतनी दूरी पर खड़ा कर दिया कि जहाँ से वह ननका की बातें सुन सकें और स्वयं जाकर ननका के पास उसके घर की देहली पर ही बैठ कर बोले, "अब कैसी तबियत है भय्या ननका ?"

"कौन दीना ! सब ठीक है भय्या ! अभी तो दस दिन में पट्टी खोलने को कहा है डाक्टर ने। लेकिन उसने कहा है कि आँखें बिलकुल ठीक हो जायेंगी।" ननका बोला।

चचा और इधर-उधर की बातें करके उसे असली बात पर ले आये।

चचा बोले, "ननका ! यह बसंती बड़ी चालाक लड़की है। लेकिन तुमने इसकी अक्ल ठीक करदी। मनोहर को तुमने जो पट्टी पढ़ाई वह सही उतरी।"

चचा की बात सुनकर ननका मुस्करा कर बोला, "भय्या दीना ! इसका दिमाग़ ही आस्मान पर चढ़ गया था रिसालसिंह और मानसिंह की शादी करके।

पहले मैंने रिसालसिंह और मानसिंह को उल्लू बनाने की कोशिश की। इन्हें आपस में भिड़ाने का प्रयत्न किया, लेकिन कामयाबी न मिल सकी। मेरा मन बहुत दुखी हुआ अपनी इस नाकामयाबी पर।

फिर मैंने इन दोनों का मन इनके जीजा जी की तरफ़ से फेरने का प्रयत्न किया। इन्हें खूब लगा-लगा कर कहा 'भाई ! सब नाते-रिश्तेदार मतलब के होते हैं। तुम इतनी ग़रीबी के दिन काट रहे हो। क्या तुम्हारी ऐसी दशा में तुम्हारे जीजा जी तुम्हें कुछ सहायता नहीं कर सकते ? मैं तो ऐसे किसी सम्बन्धी से अपना एक घड़ी भी सम्बन्ध न रखूं, जो मेरी मुसीबत में मेरे काम न आये।'

परन्तु मेरी इस बात का भी इनपर कोई असर नहीं हुआ।

फिर मैंने सोचा कि किसी तरह मनोहर और उसके भाई में ही फूट पैदा करूँ।

बस वह तीर मेरा पूरी कामयाबी के साथ चला। मनोहर पूरा काठ का उल्लू निकला। उसे मैंने वह पट्टी पढ़ाई कि यहाँ से जाते ही उसने अपने भाई से अपना सम्बन्ध विच्छेद कर लिया।

अब तो सुना है कि उसने बसंती को भी घर से निकाल दिया है। वह खुद सारी ज़मीन का मालिक बन कर बैठ गया है।

यहाँ बसंती कहती है कि उसका मनोहर से कोई झगड़ा नहीं है, वह उसे अपने मरे हुए बेटे दुलारे की ही जगह समझती है, परन्तु असल बात यही है कि यह अब उस घर में जाकर घुस ही नहीं सकती।"

चचा दीनानाथ बोले, "भय्या दीना ! तुमने यह काम लाजवाब किया।"

ननका खुश होकर बोला, "दीना ! सुना है कोई बारात आई है गाँव की दूसरी पट्टी में और उसमें मनोहर भी आया है। मनोहर मिले तो ज़रा कहना उससे कि मैं उसे बहुत याद कर रहा था।

इस बार मुझसे आकर मिल जाये, तो मामले को ऐसा गाँठ कर पक्का कर दूँ कि फिर बसंती लाख सिर पटके, तब भी उस घर में पैर नहीं रख सकती। मनोहर बड़ा ही कच्चे दिमाग़ का लड़का है।

उसका भेजा कच्ची मिट्टी के लौंदे की तरह है। उस पर जो कुछ भी बनाना चाहो बड़ी आसानी से बन जाता है।"

चचा दीनानाथ बोले, "मैं अभी उधर ही जा रहा हूँ ननका ! मनोहर मुझे मिलेगा तो मैं तुम्हारा संदेश उसके पास पहुँचा दूँगा।"

"ज़रूर कह देना दीना ! उससे कह देना कि मुझे कुछ उसके ही काम की बातें करनी हैं।" ननका बोला।

इतनी बातें करके चचा दीनानाथ वहाँ से उठ खड़े हुए और मनोहर को साथ लेकर हमारे घेर की ओर बढ़ गये।

मनोहर के पैर भारी हो गये थे। उससे चला नहीं जा रहा था। उसका सिर चकरा रहा था।

मनोहर बोला, "मौसा जी ! मुझे बड़ा ज़ोर का चक्कर आ रहा है। मेरा दिल घबरा रहा है। मुझसे चला नहीं जा रहा।"

चचा दीनानाथ ने उसे सहारा दिया और तभी सामने से रिसालसिंह आ गया।

चचा दीनानाथ बोले, "रिसालसिंह ! ज़रा मनोहर को सँभालना। इसकी तबियत खराब हो रही है।"

रिसालसिंह के मन में मनोहर के प्रति बहुत क्रोध था, परन्तु उस की खराब दशा देख कर वह उधर दौड़ पड़ा और मनोहर को सँभाल कर घेर में ले गया।

मनोहर को रिसालसिंह ने खाट पर लिटा दिया। उसका बदन पसीना-पसीना हो रहा था।

वह बौखलाहट में कह रहा था, "भाभी ! मुझे माफ करदो। मुझसे बड़ी भूल हुई।"

चचा दीनानाथ ने उसके मुँह पर पानी के छींटे दिये और रिसालसिंह तुरन्त दौड़कर हकीमजी को बुला लाया।

उन्होंने उसकी दशा देखकर कहा, "इसके दिल पर कोई गहरा

आघात पहुँचा है रिसालसिंह ! इसे आराम से लिटा दो और दौड़कर अत्तार के यहाँ से यह दवा ले आओ।" तुरन्त एक पर्चा लिखकर उन्होंने दिया।

रिसालसिंह दवा लेने अत्तार की ओर दौड़ गया।

तभी किसी ने मुझसे भी आकर मनोहर की इस दशा का जिक्र किया। मैंने सोचा, 'कुछ अनाप-शनाप खा लिया होगा शादी में। मरा बनावटी घी चल रहा है निरा। यह घी आजकल गर्मी के दिनों में तो मौत की ही निशानी है।"

यह सोचती-ही-सोचती मैं लपकी हुई घेर की ओर चल दी।

रास्ते में मुझे चमेली अपने घेर की ओर से आती मिली। मुझे इस तरह लपकी जाती देखकर उसने पूछा, "इस तरह भागी हुई कहाँ जा रही है बसन्ती ?"

मैं रुक गई चमेली की बात सुनकर और उसे बतलाया कि मनोहर किसी शादी में आया हुआ था। यहाँ आकर बीमार हो गया। हमारे घेर में है अब।

चमेली ने आश्चर्य के साथ कहा, "मनोहर !"

मैंने कहा, "हाँ।"

चमेली लम्बा साँस खींचकर बोली, "मनोहर को बीमार होने को भी कोई और जगह नहीं मिली ? आखिर तेरी ही छाती पर आकर बीमार हुआ वह भी।"

मैं बोली, "चमेली ! दुःख सहने को तो पका कलेजा मेरा ही बनाया है भगवान् ने। फिर मनोहर ही किसी और जगह जाकर बीमार क्यों होता ?"

चमेली भी मेरे साथ हो ली।

घेर में भीड़ हो गई थी। मैं और चमेली वहाँ पहुँचे तो सब इधर-उधर को हो गये।

मैं मनोहर की खाट के पास पहुँच गई। वह अचेत सा पड़ा था।

मेरी आँखों में आँसू भर आये। मैं बोलीं, "मनोहर ! मैं आ गई तेरे पास।"

मेरी आवाज़ मनोहर के कानों में पड़ी तो उसने आँखें खोल दीं। उसे विश्वास नहीं हुआ कि मैं उसके सामने खड़ी हूँ।

उसने अपनी आँखों को मलकर गौर से देखा।

वह घिघियाई-सी आवाज़ में बोला, "भाभी ! अपने मनोहर की गलती माफ कर दे।"

मैं और आगे बढ़कर बोलीं, "मनोहर ! तेरी कोई गलती नहीं है। भवितव्यता ही यह सब कुछ कराती है। मेरा बेटा दुलारे यदि जीवित होता और वह तेरे जैसी ही भूल कर बैठता तो क्या मैं उसे अपना बेटा कहना बन्द कर देती ?

सब चीजें मिट जाती हैं, लेकिन हाथों की लकीरें नहीं मिटतीं।"

तभी रिसालसिंह दवा लेकर आ गया। चाचा जी ने उस में से थोड़ी-सी दवा मनोहर को चाटने के लिए दी।

थोड़ी देर में उसका जी कुछ ठीक हो गया।

तभी चचा दीनानाथ ने मुझे अलहदा में लेजाकर पूरा किस्सा सुनाया और बतलाया कि मनोहर की यह दशा ननका की बातें सुनकर हो गई, वरना बिल्कुल ठीक दशा में वह उसे अपने साथ लाये थे।

मैं मनोहर को यहाँ से घर लिवाकर ले गई।

संध्या तक वह बिल्कुल ठीक हो गया।

उसके पश्चात् उस दिन उससे कोई बात-चीत नहीं हुई।

दूसरे दिन सुबह वह मुझसे बोला, "भाभी ! मेरे साथ चलो। मैंने अपने मुँह पर जो कालिख पोत ली है, उसे आप ही छुटा सकती हैं। यूँ मेरा मुँह नहीं है आप से अनुरोध करने का, लेकिन बेटा हूँ आपका। मुझे आशा है कि आप मेरा दिल नहीं तोड़ेंगी।"

मनोहर ने दिल तोड़ने की बात कही तो बेटा ! मुझे तुरन्त तुम्हारे फूफा जी की याद आ गई। मेरा सारा बदन सिहर उठा। मैं रो पड़ी उसकी बात सुनकर और फिर धीरे से बोली, "मनोहर ! मैं चली तो चलती तेरे साथ, लेकिन क्या करूँ तेरे भय्या आज्ञा नहीं दे रहे।

देख ! वह खड़े हैं सामने और हँस रहे हैं हम दोनों की सूरतें देख-देख कर। तूने उस ननका का विश्वास कर लिया जिसके विषय में मैंने मानसिंह की शादी से पूर्व सब कुछ तुझे बतला चुकी थी।

तूने अपने भय्या का दिल तोड़ दिया। कितने ही आघात हुए उनके दिल पर, वे सभी उन्होंने सहन किये। उनके लाड़ले बच्चे उनकी आँखों के सामने हवा हो गये और उन्होंने एक बूंद आँसू नहीं गिराया।

परन्तु उस दिन जब तूने उन्हें यह जवाब दिया कि गाँव की ज़मीन से उनका कोई सम्बन्ध नहीं तो उनका हृदय सहन नहीं कर सका और दिल डूब गया।

दुलारे और दुलारी के मरने पर जब तू नहीं आया तो मैंने उसे तेरी नादानी समझकर क्षमा कर दिया था, परन्तु जब उनके मरने पर भी तू नहीं आया तो मैं उसे क्षमा नहीं कर सकी। क्षमा कर देती तो मैं दुःख सुख से वहीं बनी रहती, परन्तु वह क्षमा करने की बात ही नहीं थी मनोहर !

तेरे भय्या अब दुबारा मरने के लिए नहीं आयेंगे और मैं तेरा आसरा नहीं देखूँगी कि मनोहर उनकी अर्थी का डंडा कन्धे पर रखकर उन्हें उनकी अंतिम यात्रा में चुआनों तक सहारा देगा।

तू इतना पत्थर-दिल बन जायगा, इसकी स्वप्न में भी मुझे आशा नहीं थी।

और रही तुम्हारे घर की सम्पत्ति की बात, सो ज़मीन और घर तो तेरे पास है ही। मेरी चीज़ बस्त और आठसौ रुपये नकद जो उनकी मृत्यु के पश्चात मेरे पास शेष था वह कोठे में खिड़की के अन्दर एक

हाँडी गड़ी है, उसमें सुरक्षित रखे हैं। तू उन्हें खोद कर निकाल लेना। तेरे घर की एक कौड़ी इस घर में नहीं आई।

तू न आता तो मैं इसके विषय में तुझे कभी सूचना भी न देती परन्तु जब तू अब आ ही गया तो फिर क्यों तुम्हारे घर की सम्पत्ति इस प्रकार नष्ट हो ?

मैं रिसालसिंह के साथ एक कुर्त्ता और एक धोती के अतिरिक्त और कुछ लेकर नहीं चली वहाँ से।

मानसिंह और रिसालसिंह ने बड़ी गरीबी के दिन काटे हैं बेटा ! और अपनी शादी के पश्चात जब मैं सात वर्ष तक यहीं रही तो इनकी आर्थिक दशा वास्तव में बड़ी खराब थी, परन्तु उन दिनों में भी इन दोनों ने कभी किसी से कोई याचना नहीं की।

मेरी शादी में बापू ने चचा दयालसिंह से कुछ रुपये कर्ज़ ले लिए थे। एक दिन मुझे शोकग्रस्त देखकर तुम्हारे भय्या मेरे सिर हो गये उस रहस्य को बताने के लिए। मैं उनसे झूठ न बोल सकी। तो वह रुपया उन्होंने मुझे तुम्हारे घर से अवश्य लाकर दिया, परन्तु वह सब उन्हीं दो वर्षों में मानसिंह और रिसालसिंह ने अदा कर दिया।

इसके अतिरिक्त अन्य कोई कौडी तुम्हारे घर की इस घर में नहीं आई।

मेरे लिए दोनों घर एक बराबर हैं।

मुझे अपने भय्यों पर गर्व है कि उन्होंने आज तक अपनी मेहनत और मज़दूरी को ही अपना समझा है और कभी किसी की किसी चीज़ की ओर बुरी दृष्टि से नहीं देखा।"

कहते-कहते मेरी ज़बान बन्द हो गई और मनोहर पत्थर के पुतले के समान सामने खाट पर बैठा एक टक मेरे चहरे पर देखता रहा।

अन्त में वह लम्बा साँस भर कर बोला, "भाभी आपको मेरे साथ चलना ही होगा। मैं आपको लिए बिना यहाँ से नहीं हिलूँगा।"

मैं मुस्करा कर बोली, "मनोहर ! मैं तेरे कहने मे नहीं चल सकती। तू यह सब भावुकता में कह रहा है। इसके पीछे जीवन की विभीषिका है। उसमें फँसकर न तो मैं यह अपना थोड़ा सा बचा-कुचा जीवन नष्ट करूँगी और न तुझे ही व्यर्थ की परेशानी में डालूँगी।

इतने दिन के अन्दर तेरे परिवार में जो मेरे लिए विष घुला है क्या वह तू समझता है कि तेरे किये धुलकर साफ होने वाला है ? ऐसा विष जो अपने लाडले भतीजों के शवों पर तुझे दृष्टि तक न डालने दे सका, ऐसा विष जो तुझे अपने सगे भाई की अन्तिम यात्रा में शामिल न होने दे सका।

तू पहले अपने घर के दूषित वातावरण को जाकर ठीक कर। अपनी पत्नी और अपने बच्चों के दिल और दिमागों को टटोलकर देख कि उनमें कहीं बसन्ती के लिए स्थान है भी या नहीं।

जब वहाँ स्थान होगा तो बसन्ती स्वयँ चली आयेगी। आखिर वही तो मेरा घर है। अपने घर में आना कौन पसन्द नहीं करता ? जब अपना घर अपना नहीं रहता तभी तो कोई दूसरे घर का सहारा तकता है।"

इतना कहकर मैं हिड़कियों से रो पड़ी।

मनोहर भी रो रहा था।

मैंने अपनी धोती के पल्ले से उसके आँसू पौंछ कर कहा, "रो नहीं मनोहर ! तू अब घर जा और अपने घर के अन्दर जो भावना तूने या तेरी पत्नी ने भर दी है, उसे दूर करने का प्रयास कर और जब तुझे यह विश्वास हो जाय कि तेरा दिल मेरे लिए वही बन चुका है जो उस दिन था जिस दिन तू मुझे रोती देखकर ब्याहली के रथ में चढ़ आया था और तूने कहा था, 'भाभी रोओ नहीं, वरना मैं भी रो पड़ूँगा', तब तू अपनी बहू के साथ मुझे लेने के लिए आ जाना। मैं चली चलूँगी तेरे साथ।"

रिसालसिंह पास ही बैठा था। मेरी दृष्टि इस पर गई तो मुझे वह बात याद आ गई जो मैंने अपनी ससुराल से अन्तिम बार आते समय उससे कही थी। मैं बोली, "मनोहर! मैं रिसालसिंह से यह वायदा कर चुकी हूँ कि अब कभी वहाँ जाने का नाम नहीं लूँगी, परन्तु तेरे लिए मैं अपना वह वायदा भी तोड़ दूँगी।

तुझे पता नहीं कि रिसालसिंह तुझे कितना स्नेह करता है। उस दिन जब यह मुझे लेने गया था और तुझसे इसने बातें की थीं तो तूने इसे ऐसे शब्द कहे कि जो तुझे नहीं कहने चाहिए थे। आखिर यह मेहमान था तेरा।"

यह सुनकर मनोहर रिसालसिंह से रोता हुआ लिपट गया और बोला, "भय्या रिसालसिंह! मुझे क्षमा करदो तुम! मुझसे सचमुच ही बड़ी भारी भूल हुई।

मैंने अपने दुर्व्यवहार से अपने सगे भाई को खो दिया, माता के समान अपनी भाभी को रूष्ट कर दिया। पता नहीं कैसा पागलपन सवार हुआ मुझपर कि मेरी अक्ल ही खफ्त हो गई।

इस समय मेरी समझ में नहीं आ रहा कि मुझे हो क्या गया था। इतना बुरा आदमी तो नहीं था मैं, जितना बुरा इन दिन में बन गया।"

इससे अधिक वह कुछ कह ही न सका।

रिसालसिंह उसे कौली में भरकर बोला, "मनोहर! जो हो चुका उस पर रोना व्यर्थ है। जीवन भर रोते रहो, तब भी कोई लाभ नहीं है। *जो चला गया वह लौटेगा नहीं। जो है उसी की शान्ति के लिए* प्रयत्न करो।

मुझे उस दिन सचमुच ही तुम्हारे वे अविवेकपूर्ण शब्द बहुत बुरे लगे थे और सच यह है कि यदि उन्हें कहने वाले तुम न होते, कोई अन्य होता, तो उस दिन उसकी मेरे हाथों शामत आ गई होती।

लेकिन आज पता चला कि वे बातें तुम्हारे मस्तिष्क में ननका की जमाई हुई थीं।

मुझे तो अब हँसी आ रही है इस बात पर कि तुमने इस बदमाश की बातों पर विश्वास कैसे कर लिया।"

मनोहर बहुत लज्जित था इस समय। उससे और कुछ कहना रिसालसिंह ने उचित नहीं समझा।

वह चलने लगा तो मेरी आँखों में आँसू आ गये। उस पर और अधिक निर्दय मैं नहीं हो सकती थी, क्योंकि वही तो अकेला रह गया था मेरी ससुराल की निशानी।

: १३ :

मनोहर पर यह रहस्य प्रकट होने से बेटा! मेरे दिल का बड़ा भारी भार हलका हो गया। उसने व्यर्थ ही मेरे और मेरे भय्यों के माथे पर जो कलंक लगा दिया था, वह धुल कर साफ हो गया।

एक दिन मैं और चमेली यहीं पर बैठे चरखा कात रहे थे और यूँ ही इधर-उधर की बातें कर रहे थे। मैं कह रही थी, "चमेली! मुझे भगवान् ने विधवा बनाया और तुझे तेरे पति ने अपने जीवित रहते हुए ही विधवा कर दिया।"

मेरी बात सुनकर चमेली हँसकर बोली, "ऐसी बातें न कर बसंती! उन्हें गाली लगती है। आखिर सरताज हैं वह मेरे। मुझे इसी बात से बड़ी शान्ति है कि वह सुख से अपना जीवन व्यतीत कर रहे हैं।

मुझे अपनी तो तनिक भी चिन्ता नहीं है बसंती! लेकिन उन्होंने अपनी बेटी राजबाला को भी भुला दिया, यह देखकर कभी-कभी दिल में पीड़ा सी अवश्य उत्पन्न होने लगती है।"

चमेली को उदास होते देखकर मैं बोली, "चमेली! परमात्मा सबको सबका प्रेम प्रदान नहीं करता। उसका न्याय बड़ा ही विचित्र है। तुम्हें अपनी माँ का प्रेम अधिक दिन प्राप्त नहीं हो सका और पिता का भर-

पूर प्रेम तुमने पाया है। राजबाला को अपने पिता का प्रेम न मिल सका तो उसे परमात्मा ने माँ का प्रेम दिया है।

जो तुम्हें मिला है उस पर तुम सन्तोष करो और जो उसे मिला है उस पर उसे संतोष करना चाहिए।"

इस पर चमेली मुस्करा कर बोली, "यह संतोष असहायता का है बसंती ! जब सब कुछ रहते हुए भी न मिल सके तो संतोष के अतिरिक्त और चारा ही क्या है ?

राजबाला की स्थिति मुझसे भिन्न है और लाला की उससे भी भिन्न। 'लाला' तुम्हारे लिए कहा चमेली ने।"

"मैं समझ गया। आप कहती चलिए।" मैं बोला।

राजबाला की शादी के उपरान्त उसके पिता जी यह समझे थे कि नये रिश्तेदार अपना सम्बन्ध उन्हीं से रखना पसन्द करेंगे क्योंकि वह धनाढ्य हैं और मैं गरीब।

लेकिन लाला ने अपना सम्बन्ध मुझसे ही रखा और उनकी धन-दौलत को ठुकरा दिया। उनके बड़प्पन के नीचे नहीं दबा वह।

अपनी शादी के बाद वह वहाँ गया ही नहीं।

मेरी राजबाला भी इतनी पक्की निकली कि उसने भी कभी वहाँ जाने का नाम नहीं लिया।

मुझे अपने बच्चों की ओर से बड़ी शान्ति है। तुमसे सच कहती हूँ बसंती ! कि अब मुझे कभी उनकी याद भी नहीं आती।"

चमेली की बात सुनकर मेरे हृदय में अथाह पीड़ा हुई। मैं लम्बा दर्द भरा साँस खींच कर बोली, "याद क्या आये ऐसे निष्ठुर की, कि जिसने किसी के साथ फेरे लेकर फिर कभी उसके दुख-दर्द की बात ही न पूछी हो। जिसने कभी यह सोचा ही न हो कि जिसे उसने बेसहारा कर दिया उसके जी पर क्या बीतती होगी। जिसने उसे अपना सर्वस्व अर्पण कर दिया उसके प्रति उसका भी कुछ उत्तरदायित्व है।"

मेरी बात सुनकर चमेली बोली, "बसंती तू ! व्यर्थ ही कभी-कभी गड़े मुर्दे उखाड़ने के लिए बैठ जाती है। इन से क्या लाभ ? तू खुद परेशान होती है और मुझे भी परेशान करती है।

मैं तो खाक डाल चुकी इन सब बातों पर। मैंने भुला ही दिया कि मैंने किसी का आँचल पकड़ा था।

लेकिन बसन्ती ! मेरे जीवन में आज जो सुख की रेखा है, वह उन्हीं की खींची हुई है। यह सच है कि उस रेखा को रंगीन बनाने में उन्होंने कभी सहयोग प्रदान नहीं किया और उस रेखा में अपने आप परमात्मा की कृपा से रंग भरा है, परन्तु उस रेखा के बनाने वाले को भुलाया नहीं जा सकता।"

"यह सब व्यर्थ की भावुकता है चमेली !" मैंने तिलमिला कर कहा। "यह सब जो कुछ भी है, तेरे भाग्य से है। इसमें उनका क्या लगा है या 'लाला' की समझदारी से है। भगवान् को धन्यवाद दो कि तुम्हें राजबाला के लिए ऐसा वर मिल गया कि जिसने तुम्हारे निराशापूर्ण जीवन में एक बार फिर से सुख और शांति की लहर संचारित करदी, वरना कोई लोभी होता तो उन्हीं से अपना सम्बन्ध बनाता, तेरा नाम भी नहीं लेता कभी।"

मेरी यह बात सुनकर चमेली हँसकर बोली, "बसंती ! यह सब सच है जो तू कह रही है परन्तु इस सच से भी कैसे इंकार करूँ कि यह राजबाला, जो आज मेरे जीवन की प्रसन्नता की आधार है, यह उन्हीं की देन है और 'लाला' को भी वही खोज कर लाये थे। ये दोनों काम उन्हीं के किए हुए हैं।"

चमेली की यह बात सुनकर मुझे भी हँसी आ गई। मैं बोली, "समय का फेर ही है चमेली ! और क्या कहें इसे ?"

ये बातें चल ही रही थीं कि तभी एक ताँगा आकर हमारे द्वार पर रुका।

मैंने और चमेली ने बाहर दगड़े में झाँक कर देखा तो ताँगे से मनोहर और मनोहर की बहू उतर रहे थे।

मैं और चमेली दोनों ही अपने चरखे एक ओर को सरका कर आगे बढ़ गये। मैंने बहू को सँभाल कर ताँगे से उतारा।

बहू ने मेरे और चमेली के पैर छुए और पीढ़े पर बैठ गई।

मनोहर ताँगा लेकर घेर की ओर चला गया।

संध्या को मैं चमेली के घर गई और बोली, "चमेली ! अब कैसे करूँ ?"

चमेली हँसकर बोली, "कैसे क्या करती बसंती ? जा हो आ कुछ दिन के लिए। वैसे निभाव तेरा यहीं होगा। मनोहर के कहने से चली ज़रूर आई है उसकी बहू लेकिन उसमें तेरे प्रति वह स्नेह नहीं है, जो तुझे वहाँ बनाये रख सके।

मनों में एक बार फ़र्क आजाने पर फिर उसका दूर होना कठिन हो जाता है। और सारे घर में रैल-फैलकर रहने की जिसे आदत पड़ जाती है फिर उसे उसमें थोड़ी सी भी रुकावट अच्छी नहीं लगती।

लेकिन जाने से पहले भय्या रिसालसिंह से पूछ लेना और उसकी इच्छा न हो तो चाहे तुझे कुछ ही बहाना क्यों न बनाना पड़े, यहाँ से जाने का नाम न लेना।

यह बुढ़ापा है बसंती ! इसे भावुकता में आकर खराब न कर बैठना।"

चमेली की बात सुनकर मैं बोली, "जो बात तूने कही है चमेली ! दिखाई तो मुझे भी वही दे रहा है। मनोहर की बहू आ अवश्य गई है उसके कहने से परन्तु उसने सुबह से एक बार भी अपने किये पर पश्चाताप नहीं किया।

मानो जो कुछ भी व्यवहार उसने मेरे साथ किया वह कोई बात ही नहीं थी। भतीजा गुज़रे और चाची दो आँसू भी न दे उसे, भतीजी मरे और चाची के दिल में दर्द ही पैदा न हो, जेठ की मृत्यु हो और

देवरानी घर में खिललिखा कर हँसती रहे। वही देवरानी आज मुझे लेने के लिए आये, तो क्या समझूँ मैं ?

मैं मुस्करादी अपने जीवन की विभीषिका पर और हँसकर बोली, "चमेली ! चैन से चार दिन के लिए भी नहीं बैठने देता विधाता। अच्छी भली यहाँ चली आई थी अपने जीवन के अंतिम दिन काटने, तो यह मनोहर यहाँ भी आटपका बीच में।

उस दिन जब चचा दीनानाथ ने मनोहर के सामने ननका की कली खोली और मनोहर को वास्तविकता का ज्ञान कराया तो मुझे प्रसन्नता हुई थी कि चलो इस घटना से और चाहे कोई लाभ न हो, परन्तु मनोहर के मस्तिष्क से वह काला धब्बा तो मिट गया जो जीवन भर इसके मस्तिष्क को काला किये रहता।

परन्तु आज सोच रही हूँ कि चचा दीनानाथ उस दिन उस बात को साफ ही न करते तो अच्छा था। एक गाँठ बन चुकी थी मेरे और मनोहर के बीच में। उसी गाँठ के झूले पर मनोहर की पत्नी झूलती रहती जीवन भर। उस गाँठ के खुल जाने ने मुझे मनोहर के परिवार में ऐसे गिरा दिया जैसे दाल-भात में मूसलचन्द टपक पड़ते हैं।"

यह कहकर मैं बहुत हँसी। चमेली भी खिलखिला कर हँस पड़ी। और हँसते-हँसते ही बोली, "बसन्ती ! मेरी बात माने और अपना मान बना रहने देना चाहे तो इस समय एक ही बात का ध्यान रखना।"

"वह क्या ?" मैंने चमेली के चेहरे पर नेत्र गड़ा कर पूछा।

"मनोहर की पत्नी की स्वतन्त्रता में काई बाधा उपस्थित न करना। दो-चार दिन रहकर इस बहाने से चली आना कि तेरा स्वास्थ खराब रहता है। यहाँ देख-भाल के लिए घर के हकीम जी हैं। बुढ़ापे की कमज़ोरी में पता नहीं क्या बीमारी कब खड़ी हो जाय।

इससे तेरा जाना भी हो जायगा और इन्हें भी इज्जत मिलेगी। मनोहर भले आदमियों के बीच में मुँह लेकर बोलने के योग्य हो जायगा। आज

चाहे गाँव के कुछ लुच्चे-लफ़ंगे इसके साथ बैठकर यह कह देते हों कि तूने अपनी भाभी और भय्या के साथ ठीक व्यवहार किया, और भले तथा दुनियाँदार आदमी चुपचाप रह जाते हों इस विषय पर, पर समझते भले और बुरे सब अपने दिलों में यही होंगे कि मनोहर ने अपने भाई की ज़मीन हड़पली और भाई के मरने पर उसकी स्त्री को भी घर से निकाल दिया ।

तेरे वहाँ जाने से लोगों की धारणा बदलेगी । मनोहर तेरी बुराई न करके गाँव में भलाई करेगा तो परिवार की बदनामी बन्द होगी ।

बसंती ! बहुत बड़ा लाभ होगा तेरे वहाँ जाने से । परिवार की जो स्थिति मनोहर ने गिरा दी है वह ऊपर उठेगी ।"

परिवार की बात सुनकर मेरे रोंगटे खड़े हो गये ।

चमेली फिर हँसकर बोलीं, "बसन्ती ! तुझे मैं माँ मानती हूँ । तू आई ही इस संसार में माँ का रूप लेकर है । बात तो तब है, जब मनोहर की बहू को तू अपनी बेटी बना सके और आज जो पश्चाताप मनोहर की बहू ने नहीं किया उसे करते-करते उसका सारा जीवन बीत जाये ।"

यह बात चमेली ने इतनी गम्भीरता पर्वक कही कि मैं शान्त हो गई । मेरा जीवन जैसे स्थिर हो गया । मानो मुझे अपने भावी जीवन का अन्तिम कार्य दे दिया चमेली ने ।

मैं मुस्करा कर बोली, "अच्छा चमेली ! तुझे मेरी इस बुढ़ापे में भी परीक्षा लेनी है तो मैं परीक्षा से पीछे नहीं हटूँगी । मनोहर की बहू को मैंने अपनी बेटी बनाकर न दिखला दिया तो मेरा नाम भी बसंती नहीं ।"

मैंने संध्या को भय्या रिसालसिंह से अकेले में कहा, "भय्या रिसाल-सिंह ! मनोहर आया है । अपने घर की दशा इसने खराब करली है । गाँव के चंद गुण्डों ने इसके साथ लग कर घर को खा लिया ।"

मेरी बात सुनकर रिसालसिंह हँसकर बोला, "तो मैं क्या मना कर

रहा हूँ जाने के लिए ? आप जायें और ये लोग आपको सम्मान के साथ रखें तो इससे बड़ी प्रसन्नता की और कोई बात ही नहीं होगी हमारे जीवन की।"

इतना कहकर रिसालसिंह रुक गया। फिर तनिक देर बाद बोला, "तुम बेफिक्र होकर जाओ जीजी ! तुम्हारी आन को सम्भालने वाले तुम्हारे दो वीर भाई मौजूद हैं। तुम्हें किस की चिन्ता ? महोनर और मनोहर की बहू अपनी भलाई और अपने सम्मान के लिए तुम्हें वहाँ रखना चाहें तो रहना, इन पर भार बन कर रहने की आवश्यकता नहीं है।"

भय्या रिसालसिंह ने मुझे जो आश्वासन दिया उससे मेरा कलेजा चौगुना हो गया।

मैंने मनोहर के साथ चलने का निश्चय कर लिया।

दूसरे दिन प्रातःकाल मैं मनोहर और मनोहर की बहू के साथ फिर अपनी ससुराल को चल दी।

बुढ़ापे में खेल खेलने चली मैं।

रास्ते भर किसी से कुछ नहीं बोली। केवल जब ताँगा मोदीनगर में आया तो मैंने मनोहर को पाँच रुपए देकर कहा, 'बच्चों के लिए पाँच रुपए की मिठाई ले-लो मनोहर ! और बजाज़े की तरफ भी चलना जरा, बच्चों के लिए कुछ कपड़ा भी लेना है।"

मैंने बजाजे से मनोहर के सब बच्चों के लिए कपड़ा लिया।

बच्चों के लिए मेरे कपड़ा लेने का मनोहर की पत्नी पर गहरा प्रभाव पड़ा। उसके नेत्रों ने अपने बच्चों के लिए उस स्त्री को कपड़ा खरीदते देखा जिसके बच्चों और पति की लाशें पड़ी रही और उसने एक दृष्टि भी उधर नहीं डाली।

वह हिल उठी। उसकी आत्मा का विकास हुआ। वह मेरे निकट आई।

मैं अपनी ससुराल में पहुँची तो गाँव की स्त्रियाँ मेरे पास आईं। बहुत प्रकार की बातें कीं। मैंने सबकी बातें सुनीं और अपने मन में रखती गई।

मनोहर की लड़की बड़ी हो गई थी। मैंने मनोहर से कहा, "इसकी शादी का तुरन्त प्रबन्ध करो मनोहर!"

मनोहर बोला, "भाभी चार साल से प्रयत्न कर रहा हूँ परन्तु अभी रुपया ही नहीं जुट पाया। गाँव के आवारा लोगों की चौकड़ी में बैठ कर मैंने अपना सत्यानाश कर लिया। मुझे इन्होंने लोभ और अपने भय्या के प्रति घृणा की पट्टी पढ़ाई। मैं इनके चक्कर में आ गया।

मेरी पत्नी के विचार भी वेही बने जो मेरे विचार थे। मैंने किसी चीज़ को बुरा कहा तो इस बेचारी ने भी बुरा कहना प्रारम्भ कर दिया। नालायकी मेरी ही है।" मनोहर दीनता पूर्वक बोला।

मेरे मन को मनोहर की बात सुनकर असीम शान्ति हुई। मैं बोली, "चलो यही गनीमत है कि अब तुम सही बातें समझने के योग्य हो गए। रुपया-पैसा आनी-जानी चीज़ हैं। तुम्हारे पास इतनी ज़मीन है कि तुम उस पर खेती करके फिर अपनी आर्थिक स्थिति सुधार सकते हो।

लेकिन इस सबसे पहले लड़की की शादी हो जानी चाहिए। तुम लड़का तलाश करो। रिसालसिंह को साथ लेकर पहले लड़के की तलाश को निकल जाओ।"

मनोहर घबरा कर बोला, "मेरे पास कुछ नहीं है भाभी!"

मैं बोली, "तुम काम पर लगो मनोहर! भगवान् सबके काम करता ही है। काम रुकता नहीं है किसी का।"

ननोहर की आँखों में आँसू भर आये मेरी बात सुनकर। वह रोकर बोला, "भाभी जो मेरे रात-दिन के साथ उठने-बैठने वाले और खाने-पीने वाले थे, उनको मैंने यह कहते सुना है, 'मनोहर के बाप की हमने इस बार मनोहर की लड़की की शादी में शान न ढीली कर दी तो हमें भी कौन कहेगा।'

जिस दिन ये शब्द इन लोगों के मेरे कानों में पड़े थे तो मेरा सिर चकरा गया था और जिस दिन ननका की बातें मेरे कानों में पड़ीं उस दिन मैं बेहोश हो गया।

मैं तब समझा कि इन बदमाशों ने मेरे चारों ओर ऐसा जाल बिछाया था कि इन्होंने मुझे आपसे और भय्या से विमुख कर दिया। मैं इनके हाथों लुटता रहा और अपने परिवार का नाश करता रहा। अपने भाई के हिस्से को खाता भी रहा और उन पर गुर्राता भी रहा। मैंने अपनी मनुष्यता को नष्ट करके अपना ही घर उजाड़ दिया।

भाभी गाँव में जैसे गुण्डे कुछ आदमी हैं वैसी ही कुछ औरतें भी हैं। उन औरतों ने भी हमारे घर आकर मेरी पत्नी के सामने आपकी बुराई करके खूब लूटा।

परन्तु अब मैंने उनका आना-जाना भी अपने घर में बन्द कर दिया है।

मेरे इस व्यवहार से पूरे गाँव भर में सनसनी है।

मैं अब किसी के भी पास नहीं उठता-बैठता। अपने काम-से-काम रखता हूँ।"

मैं बोली, "यह तुमने ठीक किया मनोहर! व्यर्थ लोगों में बैठने की अपेक्षा आदमी को अपने बाल-बच्चों में बैठना चाहिए।"

मनोहर ने रात्रि में अपनी पत्नी से जब मेरी कही गई बातों का जिक्र किया तो अनायास ही उसकी जबान से निकला, 'आपने बसन्ती जीजी को समझने में भूल की। आपकी भूल ने मुझे भी उनके प्रति अमानवीय बना दिया।

हम दोनों ने उनके बच्चों और उनके पति के शवों को बिला दो आँसू भी गिराये अपनी आँखों के सामने से निकल जाने दिया और वह आज परिवार की मर्यादा बचाने के लिए इतना साहस बँधा रही हैं।'

दूसरे दिन प्रातःकाल मनोहर यहाँ आया और यहाँ से रिसालसिंह को लेकर लड़का खोजने निकल गया।

यह काम मैंने बेटा ! इतनी शीघ्रता से किया कि सारा गाँव देखता ही रह गया। जिस तरह यहाँ के लोगों ने मानसिंह और रिसालसिंह की शादियों को अचम्भे के साथ देखा था उसी अचम्भे के साथ मेरी ससुराल वालों ने मनोहर की लड़की की शादी को देखा।"

लड़की को मैंने चीज़-वस्त्रों से अच्छी तरह विदा किया तो मनोहर की पत्नी मेरे पैरों पर गिर पड़ी।

मैंने उसे उठाकर सीने से लगाया और बोली, "यह समय तो हर उस माँ पर आता ही है जब उसे अपनी इतने वर्ष की पाली-परसी कन्या को किसी अनजान के हवाले करना होता है। परन्तु बहू ! यह पुरानी रीत है। इसके अतिरिक्त चारा भी नहीं है और कुछ।"

वह रोकर बोली, "जीजी ! मैंने आपका बहुत अनिष्ट किया है। मैंने आपके साथ बहुत ही अमानवीय व्यवहार किया है। फिर भी आपने मेरी सन्तान को अपनी सन्तान समझा। इतना बड़ा त्याग एक माँ ही अपनी सन्तान के लिए कर सकती है, जो आपने मेरे लिए किया।

मैं आपको अपना मुँह दिखलाने योग्य भी नहीं समझती।"

बातें मनोहर की पत्नी ने इतनी समझदारी की कही कि मैं दंग रह गई सुनकर।

आज वह रोती जा रही थी और कहती जा रही थी अपने हृदय की बात। आज उसकी दशा उस दिन की सी नहीं थी जिस दिन उसे साथ लेकर मनोहर यहाँ मुझे लिवाने के लिए आया था।

उसके जीवन में यह परिवर्तन देखकर मुझे हार्दिक प्रसन्नता हुई। मुझे तभी चमेली की याद आ गई।

मेरे मन ने कहा, 'चमेली बेहद प्रसन्न होगी मेरी इस विजय की सूचना पाकर।'

रिसालसिंह और मानसिंह मुझे माँ मानते थे तो कोई बात नहीं थी वे मेरे छोटे भाई थे, चमेली माँ मानती थी तो वह मेरी छोटी बहन थी।

मनोहर ने माँ माना तो उसे मैंने सात वर्ष की आयु से माँ की तरह सीने से लगाकर पाला था। परन्तु आज जब मनोहर की बहू ने मुझे माँ मान लिया तो मैंने भी गर्व के साथ अपने मन में कहा, 'बसन्ती ! तू सचमुच माँ है। तेरा कर्त्तव्य है कि तू अपना माँ का कर्त्तव्य निभाये जाये बच्चे स्वयँ समझलेंगे कि उनका क्या फर्ज़ है उसके प्रति।'

मैं बहू से बोलीं, "पगली कहीं की। बारात विदा हो रही है और तूने न जाने कहाँ की बातें शुरू कर दीं। लड़का टीके पर आने वाला होगा।" और मैं चाँदी के पूरे सौ रुपये उसके हाथ देकर बोली, "दामाद का टीका पूरे सौ रुपये से करना।"

मनोहर की बहू पानी-पानी हो गई बेटा !

बसन्ती जीजी की यह बात सुनकर मैंने पूछा, "बुआ जी ! उस समय आपके पास यह सब रुपया कहाँ से आया ?"

मेरा प्रश्न सुनकर बसन्ती बुआ जी हँसकर बोलीं, "मैं सोच ही रही थी कि अब तू यही बात पूछने वाला है।

रुपये की बात यह थी बेटा ! कि एक तो मेरा सारा जेवर उसी घर में गड़ा हुआ था। मैंने वह खोदकर निकाल लिया और उसी में सात सौ चाँदी के रुपये गड़े थे, जो तुम्हारे फूफा जी को नौकरी समाप्त होने पर सरकार से मिले थे।

इनके अलावा भी मेरे पास लगभग एक हज़ार रुपया और था।"

मैंने पूछा, "वह कहाँ से आया आपके पास ?"

बुआ जी बोलीं, "वह मेरी मज़दूरी का था। मैंने यहाँ आकर कताई पर सूत कातना प्रारम्भ कर दिया था। खाना कपड़ा मुझे भय्या देते ही थे, फिर खर्च ही क्या था मेरे पास ? जो कुछ मिल जाता था वही धीरे-धीरे जमा होकर इतना हो गया था।"

मेरा हृदय बुआ जी की यह बात सुनकर गद-गद हो उठा। मेरा मस्तक उनके त्याग, तपस्या और मज़दूरी के सम्मुख झुक गया।

वह थक सी गई थीं अब।

मैं बोला, "अच्छा बुआ जी मैं अब चलूँगा तनिक ! परन्तु आज का दिल्ली जाना स्थगित करना पड़ा।"

बुआजी बोलीं, "क्यों ?"

मैंने मुस्करा कर कहा, "आपकी कहानी जो पूरी नहीं हुई अभी। अब आप थक गई हैं। इसलिए सन्ध्या को सुनूँगा इसका अन्तिम भाग।"

"लेकिन बेटा ! बस वही सारी कहानी का सार है। आदमी को सीढ़ियाँ चढ़ते और उतरते ही जीवन बीत जाता है। पीछे की सीढ़ी पीछे रह जाती हैं और सामने की सामने रुक जाती हैं।

परन्तु आदमी चले नहीं तो क्या करे ? एक जगह खड़े-खड़े तो दीमक लग जाए शरीर को।"

मैं खड़ा होता हुआ हँस पड़ा बुआ जी की बात पर।

बुआ जी कभी-कभी बड़ी ही समझदारी बात कह डालती थीं।

: १४ :

मैं बाँकेबिहारी के साथ वापस घर पहुँचा तो मेरी पत्नी बोलीं, "आप तो विदा होकर गये थे। अब तक कहाँ थे आप ?"

मैं बोला, "बुआ जी के पास बैठे-बैठे उनकी कहानी सुनते-सुनते यह समय हो गया और कहानी अभी भी रह गई। बतलाओ फिर कैसे चला जाता ?

अभी तो कहानी ज़रा उभार पर आई है, और मैं चला जाता।"

वह बोलीं, "आप सचमुच ही बड़े विचित्र हैं।" कहकर वह मुस्करा दीं।

मैं उनकी मुस्कराहट का अर्थ समझकर बोला, "शायद खाना नहीं बना हमारे लिए तो वह कोई बात नहीं। तुम गर्म दूध लेकर उसमें

चौलाई का लड्डू डाल दो। बाँके बिहारी को भी आज वही खिलाओ। यह भी क्या याद करेंगे कि कभी गाँव की सैर की थी।"

राजबाला दूध में चौलाई का लड्डू डालने लगी तो मैं बाँकेबिहारी से बोला, "सुनी तुमने गाँव के लोगों की दशा। तुमने देखा कि मनोहर को किस प्रकार लोगों ने उसके भाई के विरुद्ध किया। यह चालबाजी लोगों के जीवन में बढ़ती जा रही है। मानव-जीवन में यह घातक बीमारी है।

मानव-जीवन में लगने वाली इस बीमारी का क्या साहित्य को उपचार नहीं करना चाहिए ?"

बाँके बिहारी मेरी बात सुनकर स्तब्ध रह गया। उसके मुख से निकला, "इतना उद्देश्यपूर्ण ?"

मैंने कहा, "बिलकुल उद्देश्य विहीन नहीं। निरुद्देश्य साहित्य कोई साहित्य नहीं है मेरी दृष्टि में। निरुद्देश्य आत्मानंद और अय्याशी में मैं कोई अन्तर नहीं समझता।"

बाँकेबिहारी मेरी बात सुनकर सकपका उठा। उसकी प्रेम की परिभाषा डगमगा चुकी थी। उसने नया मार्ग ग्रहण करने का निश्चय कर लिया था।

वह बोला, "शर्मा जी ! मैंने अब तक जो उपन्यास लिखा है मैं उसे दिल्ली जाकर फाड़ डालूँगा। अब मुझे लग रहा है कि मैंने पात्र ही उपयुक्त नहीं चुने अपने उपन्यास के लिए। कमबख्त सब निरुद्देश्य हैं। अधिकांश तो लफंगे लड़के हैं। कमलकुमार के साथी जिनका उद्देश्य ही शहर में गुण्डा-गर्दी करते फिरना है।

ये लड़के घरों से तो यह कह कर आते हैं कि कालेज में पढ़ने जा रहे हैं और करते हैं आवारागर्दी। इनका काम भी ठीक वही होता है जो मनोहर के साथियों ने किया। कक्षा के सीधे लड़कों को ये मूर्ख बनाते हैं।"

मैं बोला, "तुम्हारा उपन्यास इस बार हम आद्योगंत सुनेंगे। उसे

फाड़ने की आवश्यकता नहीं है। तुम्हारे निरुद्देश्य उपन्यास को हम उद्देश्यपूर्ण बना देंगे।"

"सच शर्म्मा जी !" बाँकेबिहारी आशापूर्ण स्वर में बोला।

बाँके बिहारी आदर्श की झोंक में यह कह तो गया था कि वह उसे फाड़ कर फेंक देगा परन्तु मैं जानता था कि अपनी रचना को फाड़ने में लेखक को कितना दर्द होता है।

राजबाला दूध के दो कटोरों में दो चौलाई के लड्डू ले आई। चौलाई का लड्डू दूध में डालकर मुझे बहुत स्वादिष्ट लगता है।

बाँकेबिहारी ने चौलाई का लड्डू इस प्रकार आज प्रथम बार खाया था अपने जीवन में। एक चम्मच उसने मुँह में रखी तो उसे बहुत स्वादिष्ट लगा। वह बोला, "यह तो शर्मा जी दूध में घुलकर मलाई सा हो गया।"

मैंने पूछा, "अच्छा भी लगा तुम्हें ?"

"बहुत अच्छा शर्मा जी !" आँखें मटका कर बाँकेबिहारी बोला।

मैं उसकी मुखाकृति से समझ गया कि उसे बहुत आनन्द आ रहा था।

माजी बोलीं, "तुम खाने का पोतपूरा सा क्यों कर रहे हो लाला ! मैं अभी चार पराँठे सेक देती हूँ पाँच मिनट में।" और उठकर खड़ी हो गईं वह।

मैं हँसकर बोला, "आप लेटी रहो माजी ? हमें बहुत आनन्द आ रहा है।" और, फिर अपनी बात के समर्थन के लिए बाँके बिहारी से बोला, "क्यों बाँके बिहारी ?"

बाँकेबिहारी बोला, "सचमुच माजी ! यह बहुत ही स्वादिष्ट है। पूरी-पराँठे हम रोज खाते हैं। यह तो आज हमने अपनी ही होशियारी से पा लिया। यदि पहले ही कह जाते कि हम लौट आयेंगे तो आप खाना बना रखतीं। यह लड्डू नहीं देती आप।"

बाँकेबिहारी की इस उपहासपूर्ण बात ने सबको हँसा दिया।

खाने के पश्चात हम सब मिलकर बैठ गए। बाँके बिहारी अपनी भाभी जी के साथ गप-शप करने लगा और मैं माजी के पास जा बैठा।

इस बार काफी दिन बाद आया था मैं। माजी बोली, "बेटा हो जाया करो जल्दी-जल्दी। तुम्हें देखने को आँखें तरसती रहती हैं।

कभी-कभी तबियत जब बहुत उदास होती है तो यह जी हो आता है कि उड़कर पहुँच जाऊँ तुम्हारे पास।"

मैं बोला, "माजी ! जी कभी-कभी मेरा भी इसी प्रकार छटपटाता है, परन्तु क्या करूँ ? अकेला आदमी हूँ। कोई जरा भी सहारा देने वाला नहीं है इस धरती पर।

नाम लेने के लिए पिता जी थे, सो उन्हें भी भगवान् ने नागहानी उठा लिया।"

माजी लम्बा साँस खींच कर बोलीं, "बेटा ! मैं सब समझती हूँ। तेरे सिर पर भी बड़ा बोझ है। इस दुनियाँ में आदमियों की ही माया है। आदमियों के ही सिर पर तो यह दुनियाँ का खेल है। आदमी नहीं है तो कुछ भी नहीं है।

तुम्हारे पिता जी थे, तो वर्ष में एक-दो बार आ ही जाया करते थे यहाँ।"

इसी प्रकार बातें करते-करते संध्या हो गई।

संध्या की चाय पीकर मैं और बाँकेबिहारी फिर बसंती बुआ जी के पास पहुँचे।

बुआजी हमारी प्रतीक्षा में ही थीं। हमें देखकर बोलीं, "आ जाओ बेटा ! मैं अभी-अभी तुम्हें ही याद कर रही थी।"

हम दोनों बुआ जी के पास दूसरी खाट डाल कर बैठ गये।

बुआ जी बोलीं, "बेटा ! मनोहर की लड़की कौशल्या जिस लड़के को व्याही है, वह भी अब दिल्ली में ही कहीं मुलाज़िम हो गया है। कहीं पहाड़ी धीरज पर रहता है वह लड़का।

बड़ी ही नेक लड़की है कौशल्या बेटा ! और वह लड़का भी बड़ा सुशील है।

कौशल्या चार दिन बाद जब लौट आई तो मैं मनोहर से बोली, "मनोहर ! मैं अब जाऊँगी रिसालसिंह के साथ। वह चार दिन से इसीलिए ठहरा हुआ है।"

मनोहर ने यह बात अपनी पत्नी से कही तो वह मेरे पास आकर रोने लगी।

मैंने उससे कहा, "पगली ! रोने क्यों लगी तू ? मैं तो फिर आ जाऊँगी कुछ दिन बाद।"

उसने पैर पकड़ लिए मेरे बेटा ! और गिड़गड़ा कर बोली, "मैं आपको नहीं जाने दूंगी जीजी !"

मैं हँस कर बोली, "अरी बावली ! तो क्या तुमने कैद करने की ठान ली है मुझे ? मेरे यहाँ रहने पर तो कभी तेरे जेठ जी ने भी पाबंदी नहीं लगाई थी।"

मेरी यह बात सुनकर वह लज्जित सी हो गई। मैं बोली, "बहू ! तेरे अन्दर मैं अपने लिए प्रेम पैदा कर सकी, यह देख कर मुझे कितनी प्रसन्नता हुई इसका मैं वर्णन नहीं कर सकती। तू सच जान बहू ! कि यदि मेरे जीवन में कुछ प्रसन्नता के क्षण आये हैं तो यह उनमें से एक है।"

उसका मस्तक श्रद्धा से मेरे चरणों पर झुक गया। मेरे हृदय ने विशाल होकर उसे अपने में समेट लिया।

मैं सोचती रही कि बच्चों की नासमझी से भी कभी-कभी कितना बड़ा अनर्थ हो जाता है। मुझे उस समय तुम्हारे फूफा जी की याद आगई। वह अभी इतने बूढ़े नहीं हो गये थे कि उनके मरने का समय आ गया था। यदि मनोहर ने उनका दिल न तोड़ा होता तो वह मरते नहीं उस समय।

मेरी आँखें एक क्षण के लिए उनकी स्मृति में बन्द हो गईं। मैंने देखा वह सामने अपनी उसी सादा पोशाक में खड़े मुस्करा रहे थे। उन्होंने आगे बढ़कर मुझे स्नेह से अपनी अंक में भर लिया और मेरी ठोड़ी पकड़ कर ऊपर को करते हुए मेरी आँखों में आँखें डाल कर बोले, बसंती ! जो काम मैं नहीं कर सका, वह तूने कर दिखाया। मनोहर और उसकी पत्नी का प्रेम और उनकी श्रद्धा जो मैं प्राप्त नहीं कर सका वह तूने प्राप्त की।

अपने परिवार की जिस मान-मर्यादा की मैं रक्षा नहीं कर सका, वह तूने की। इस घर को उजड़ने से मैं नहीं बचा सका, इसे तूने बचाया।

बसंती ! तू देवी है मेरे हृदय की, माता है इस परिवार की।

"जीजी !" तभी मनोहर की बहू ने मुझे झंझोड़ कर कहा। मेरा स्वप्न टूट गया।

बहू मेरे सामने खड़ी थी।

मैं वहीं खाट पर बैठ गई और धीरे-धीरे बोली, "बहू ! तेरे जेठ जी आये थे अभी। वह मिल जाते हैं कभी-कभी मुझ से आकर। वह कह रहे थे कि मैं माँ हूँ इस परिवार की।"

"माँ तो आप हैं ही जीजी ! मैं आज से आपको जीजी माँ कह कर पुकारा करूँगी।" बहू बोली।

बेटा ! मनोहर की बहू के मुँह से निकले इन शब्दों ने मेरे कानों में अमृत का संचार किया। मेरा यह सूखा और नीरस जीवन मुझे लगा कि हरा और रस-पूर्ण हो गया।

मैंने आगे बढ़कर उसे छाती से लगा कर कहा, "बेटी ! तुम खुश रहो, फलो-फूलो। तुम्हारा सौभाग्य बना रहे।"

तभी रिसालसिंह ताँगा लेकर घर के बाहर आ गया। मनोहर भी उसके साथ था।

मैं मनोहर से बोली, "आज से ठीक पंद्रह दिन बाद तू ताँगा ले आना मनोहर ! मैं तेरे साथ आ जाऊँगी।"

वे दोनों रो रहे थे और उनके पास खड़े उनके तीनों बच्चों की भी आँखें भर आई थीं।

तभी मेरी दृष्टि कौशल्या पर पड़ी, जो सबसे पीछे घर की चौखट पर खड़ी रो रही थी।

रिसालसिंह ने ताँगा-हाँक दिया था। मैं उससे बोली, "रिसालसिंह ज़रा ताँगा रोक दे।"

रिसालसिंह ने ताँगा रोक दिया।

मैं ताँगे से उतर कर घर के द्वार पर खड़ी कौशल्या के पास पहुँची और कहा, "कौशल्या ! चल जल्दी से साड़ी बाँध ले।"

कौशल्या तीर की तरह घर में घुस गई और दो मिनट में साड़ी बाँध कर चलने के लिए तैयार होकर बाहर निकल आई और सीधी मुस्कराती हुई आगे बढ़कर ताँगे में जा बैठी।

मैं भी फिर ताँगे में आ बैठी और रिसालसिंह ने ताँगा हाँक दिया।

कौशल्या को साथ लेकर मैं यहाँ ताँगे से उतरी तो पहले अपने घर नहीं गई, सीधी चमेली के घर पहुँची।

चमेली अकेली बैठी चर्खा कात रही थी। मुझे देखते ही वह खड़ी होकर मुझ से आ लिपटी और फिर इसने कौशल्या को पुचकार कर खाट पर बिठलाया।

चमेली ने पूछा, "कब आई बसंती ?"

मैं हँसकर बोली, "ताँगे से उतर कर सीधी तेरे पास ही आ रही हूँ चमेली ! अभी घर भी नहीं गई अपने।"

चमेली मुस्करा कर बोली, "माँ बनने की प्रसन्नता इतनी ही बड़ी वस्तु है बसंती ! तुम सचमुच माँ हो। मैं सब कुछ सुन चुकी हूँ और मुझे पहले भी विश्वास था कि तुम इस कठिन कार्य को पूर्ण कर सकोगी।

त्याग में बहुत बड़ी शक्ति है बसंती ! यही तो प्रेम का मूलाधार है। जहाँ त्याग है वहाँ प्रेम न हो, यह कभी सम्भव नहीं।"

चमेली ने फिर कौशल्या की ओर देखकर कहा, "यह कौशल्या है, मनोहर की लड़की। इसी की शादी की है ना तुने बसंती।"

मैं गदगद हो उठी चमेली की बात सुनकर। मेरे मुख से 'हाँ' भी न निकल सका।

कुछ ठहर कर मैं बोली, "करने वाला तो सब कुछ भगवान् ही है लेकिन शादी बहुत अच्छी हो गई। लड़का भी रिसालसिंह ने अच्छा ही ढूँढ लिया। दसवाँ दर्जा पास है। कहीं शहर में नौकरी मिल गई तो कौशल्या आराम से रहेगी।"

इसके बाद मैं अपने घर आई।

कौशल्या को इसकी दोनों मामियों ने बड़ा प्यार किया और पंद्रह दिन में ही यह इनके प्यार में डूब गई कि जब पंद्रह दिन पश्चात मनोहर मुझे लेने आया तो कौशल्या मेरे साथ नहीं गई।"

: १५ :

उसके पश्चात मनोहर और मनोहर की बहू का जीवन ऐसा बदला बेटा ! कि हमारे घर में एक बार फिर सुख तथा शांति का साम्राज्य छा गया।

मनोहर की खेती, जो गुण्डा-चौकड़ी में बैठने के कारण वह उजाड़ बैठा था, मैंने फिर से सँवारी।

खेती मैंने यहाँ रिसालसिंह और मानसिंह के साथ कई वर्ष तक कराई थी बेटा ! मुझे खेती करनी आती थी।

मैंने मनोहर की खेती अपनी देखभाल में करानी प्रारम्भ की तो एक वर्ष में ही हमारे घर की दशा सुधर गई।

मैं स्वयं खेतों पर जाती थी और अपनी पूरी खेती को देखकर आती थी। मनोहर मेरे साथ जाता था।

गाँव के उन गुण्डे लोगों ने जो, अभी तक मनोहर को उल्लू बना रहे थे, गाँव भर में मेरे खेतों पर जाने का चबाव किया, परन्तु मैंने किसी की चिन्ता नहीं की।

मेरे कानों में आवाज़ें आईं, 'यह बुढ़िया खेती करने चली है।' ....'अब बुढ़िया हलों में जुतेंगी।' .. ..'यह बूढ़ी ढोकरी अपने को न जाने क्या समझती है।'.....'इस बुढ़िया की हड्डियाँ इन खेतों में ही न बिखर जायें तो तब कहना।' .. .. 'हम जवानों से तो खेती होती नहीं, यह बूढ़ी खूसट चली है खेती कराने।'

मैंने ये सब बातें बड़े धैर्य के साथ सुनीं और चिन्ता नहीं की किसी की भी। मैं अपने काम पर जुटी रही।

एक वर्ष के अन्दर-ही-अन्दर मैंने खेती का सिलसिला सही कर दिया।

मैंने पूरी चालीस बीघे ईख बुवाई उस वर्ष और जब वह उगकर बड़ी हुई तो सामने लगता था कि बन-का-बन खड़ा था।

मेरा हृदय फूल उठा अपनी इस खेती को देखकर।

आज मनोहर बोला, "भाभी! तुम इतनी अच्छी खेती करना जानती हो यह तो मुझे पता ही न था।

आज सोचता हूँ कि यदि मैं आपको न लाता तो मेरा क्या बनता? वे लोग जो जोकों के समान मेरे शरीर से चिपट गये थे। मेरी सारी ज़मीन बिकवा कर ही दम लेते।"

मनोहर की बात सुनी तो मुझे अपने वे दिन याद आ गये जब मैंने बापू की मृत्यु के पश्चात रिसालसिंह और मानसिंह की खेती को सँभाला था।

मैं गम्भीरता पूर्वक बोली, "बेटा मनोहर! तुम तो फिर भी जवान हो और जो काम मैं बतलाती हूँ कर लेते हो। मैंने तो रिसालसिंह और मानसिंह की खेती उन दिनों में कराई है कि जब वे दोनों हल का डंडा पकड़ने योग्य भी नहीं थे।

परन्तु भला हो चचा दीनानाथ का कि जिनकी बदौलत मैं वह सब कुछ कर सकी। उन दिनों चचा दीनानाथ मुझे सहारा न देते तो मैं कुछ भी नहीं कर पाती।"

चचा दीनानाथ का नाम मेरे मुख से निकला तो मनोहर की आँखों में आँसू आ गये।

मनोहर बोला, "भाभी ! दीनानाथ मौसा जी का मुझ पर बहुत बड़ा एहसान है। मेरी आँखें खोलने वाले वही हैं। यदि उस दिन उन्होंने इतनी होशियारी के साथ मुझे ननका की वे बातें न सुनाई होतीं तो मेरे दिल पर जो प्रभाव जम चुका था, वह आसानी से मिटने वाला नहीं था।

वैसे आपके यहाँ से चले जाने के पश्चात गाँव के अपने साथियों के व्यवहार को देखकर मैं कुछ घबरा अवश्य उठा था और यह भी अनुभव करने लगा था कि मैं कहीं भूल कर गया हूँ परन्तु सही नतीजे पर पहुँचना मेरे लिए कठिन था।"

मैं हँसकर बोली, "चचा दीनानाथ बेटा ! बड़े नेक आदमी हैं। तुम्हारे घर से मेरा सम्बन्ध बनाने वाले वही हैं। यह काम उन्हींने सम्पन्न कराया था और जिस समय मेरा रिश्ता हुआ तो हमारे घर की दशा बहुत खराब थी।

मेरी शादी का सब खर्च चचा दीनानाथ ने ही अपने सिर पर ओटा अपनी पत्नी से छिपाकर उनकी चीज़ें गिरवीं रखकर रुपया बापू को दिया।

भय्या रिसालसिंह और मानसिंह ने उनका वह सब रुपया दे दिया परन्तु बेटा ! अदा कर देने पर भी क्या उनका अहसान कम हो गया ? अपने सगे सम्बन्धियों की सहायता तो नाते-रिश्तेदार करते ही हैं, परन्तु वह मेरे मुँह बोले के चचा हैं और पिताजी के मुँह बोले के भाई हैं। उनका यह त्याग बहुत बड़ी चीज़ थी। पास पैसा होने पर बहुत से

लोग अपने मित्रों को सहायता दे डालते हैं परन्तु अपनी स्त्री की चीजें गिरवीं रखकर साथी की लड़की की शादी करने वाली मिसाल शायद तुम्हें एक भी देखने को न मिले।"

मनोहर का हृदय चचा दीनानाथ के चरित्र के सम्मुख आदर से झुक गया।

उसके पश्चात जब मनोहर यहाँ मानसिंह के लड़के की शादी में आया तो उसने बड़ी श्रद्धा के साथ चचा दीनानाथ के पैर छुए और नम्र वाणी में कहा, "मौसा जी ! मैं अब आपके ही जिलाये जी रहा हूँ। आपने मेरी आँखों पर जो पर्दा पड़ गया था उसे फाड़कर मुझे फिर से प्रकाश में ला दिया।"

चचा दीनानाथ खुश होकर बोले, "बेटा ! तुमने अपनी भाभी बसंती को पहचाना ही नहीं था। बसंती तुम्हारी भाभी नहीं है, यह देवी हैं, त्याग और तपस्या की देवी।"

इससे अधिक चचा कुछ नहीं कह सके। उनकी आँखें छलछला आई थीं।

वह फिर धीरे से बोले, "बेटा ! इसके साथ एक अन्याय जीवन में मैं भी कर चुका हूँ, लेकिन बहुत मजबूर हो गया था मैं उस समय।

इसकी शादी में मैंने तुम्हारी मौसी की कुछ चीजें गिरवीं रखकर भय्या को कुछ रुपये दे दिये थे।

उनके बड़े-बड़े अहसान थे मुझ पर, परन्तु उन दिनों बसंती की माँ की बीमारी में वह बिलकुल खाली हाथ हो गये थे।

जब उनके मरने के बाद भी सात-आठ वर्ष तक बसंती मुझे रुपया नहीं लौटा सकी तो जाने क्यों मेरे मन में यह धारणा बन गई कि बसंती रुपया होने पर भी देना नहीं चाहती।

उसके पश्चात बसंती ने मेरा वह रुपया मुझे दे-दिया। मैंने रुपया लेकर तुम्हारी मौसी की वे चीजें छुड़ा लीं। फिर कई दिन पश्चात

मुझे पता चला कि वह रुपया बसंती ने अपने पति से लेकर मुझे दिया था।

जब यह पता चला तो मुझे बड़ा भारी पश्चाताप हुआ। यदि मुझे इस बात का पहले ही पता चल जाता तो मैं वे रुपये एक-से-लाख तक न लेता। चीजें बला से खत्म हो जातीं, मुझे इसकी कोई चिन्ता नहीं थी।

इस बात का दर्द मेरे सीने में आज भी बना हुआ है कि मैंने बसन्ती का अविश्वास किया।

अपने इस दर्द को मैं बसन्ती पर आज तक प्रकट नहीं कर सका और करूँ भी क्या ? अब तो वह उपहास-सा ही है।

मानसिंह के लड़के की शादी में यहाँ खूब धूम-धाम रही बेटा ! मनोहर अपनी पत्नी और सब बाल-बच्चों को लेकर आया।

अब ननका की आँखों से कुछ झाँकली पड़ने लगी थी। बिल्कुल बूढ़ा कुरकुला हो गया था। रस्सी लगभग जल चुकी थी, परन्तु उसके बल नहीं गये थे।

वह मनोहर को देखकर बोला, "अरे ! मनोहर आया है क्या ? बेटा ! तू तो हमें ऐसा भूल गया कि इस बीच में कई बार यहाँ आया और मिलकर ही नहीं गया हम से।"

मनोहर हँसकर बोला, "मौसा ! कुछ समय ही नहीं मिला तुम से बातें करने का। इस बार कई दिन रहूँगा तो खूब खुलकर बातें होंगी। आप जैसे अपने शुभचिन्तक से भी बातें न करूँगा,तो और करूँगा किससे?"

इतना कहकर मनोहर ननका के निकट पहुँच गया।

ननका बोला, "बेटा ! देख रहे हो मनोहर और रिसालसिंह के ठाट-बाट ? यह सब तुम्हारे ही घर का रुपया बोल रहा है। वरना यहाँ रखा क्या था ? ये लोग तो दस वर्ष तक दीना का वह रुपया भी अदा नहीं कर पाये थे कि जो उस बेचारे ने बसन्ती की शादी में दिया था। आखिर वह रुपया भी तुम्हारे भाई दयाराम ने ही अदा किया।

और फिर जब बसन्ती तुम्हारे भाई दयाराम के मर जाने पर यहाँ आई तो तब तो यह तुम्हारे घर का सब बखेड़ा ही समेट लाई।

मैंने तो यहाँ तक सुना है कि यह अपनी चीज़-बस्तों के साथ तुम्हारी बहू की चीज़-बस्तों पर भी छापा मार लाई थी।

सुना है घर की कौड़ी-कौड़ी उठा लाई थी यह।

मानसिंह के लड़के की शादी में यह सब जो गुल खिला तुम देख रहे हो, यह सब तुम्हारी उसी दौलत की करामात है।"

मनोहर ननका की गम्भीर मुख-मुद्रा से कही गई सब बातें चुपचाप खड़ा हुआ सुनता रहा और मुस्कराता रहा।

जब वह अपनी पूरी बात कह चुका तो मनोहर बोला, "मौसा! यदि तुम न होते तो मुझे ये राज़ की बातें भला कौन बतलाता? तुम्हारे दिल में मेरे लिए कितना प्यार भरा पड़ा है, इसका अन्दाज़ हर कोई नहीं लगा सकता।"

मनोहर की बात सुनकर ननका का बोड़ा मुँह खिल गया। उसके हृदय में गुदगुदी-सी पैदा होने लगी। वह बोला, "बेटा मनोहर! बात दरअसल यह है कि जब मैं किसी की हानि होती देखता हूँ तो मुझ से रहा नहीं जाता। जिसकी हानि होती है मेरा हृदय उसके प्रति करुणा से भर जाता है। मेरा दिल छटपटाने लगता है कि कब वह व्यक्ति मेरे पास आये और कब मैं उसे उसकी हानि के प्रति सचेत करूँ।

इस बीच में तुमसे भेंट ही नहीं हुई, वरना यह राज़ तुम्हें पहले ही मालूम हो जाता। बसन्ती की करतूतों को तुम जान लेते तो मुझे विश्वास है कि कभी भी इसे यहाँ से ले जाने का नाम तक न लेते। इसे यहीं पड़ी-पड़ी सड़ने देते और देखते कि चन्द दिनों में ही मानसिंह और रिसालसिंह की बहुएँ इसकी क्या दुर्दशा करतीं।

तुमने बचपने में आकर जल्दबाज़ी की, वरना यह तो स्वयँ ही किसी दिन तुम्हारे पास सहारे के लिए गिड़गिड़ाने आती।"

मनोहर बोला, "यह तो वास्तव में मुझसे बड़ी भारी भूल हुई मौसा ! पीछे जब यहाँ आया था तो रिसालसिंह ऐसा पीछे लगा रहा कि उसने मुझे तुमसे अकेले में बातें करने का अवसर ही नहीं मिलने दिया।"

मनोहर की यह बात सुनकर ननका खूब हँसा और हँसता हुआ ही बोला, "रिसालसिंह को क्या तुम कुछ कम समझते हो बेटा ! यह बिच्छू का बच्चा है ! इसका बाप बड़ा ही मक्कार आदमी था। तभी तो उसने बसन्ती का रिश्ता तुम्हारे घर में किया था। तुम्हारे घर को और इस घर को भला क्या लीजिये और क्या दीजिये।

वह तो रहा नहीं कुछ दिन। यह अच्छा ही हुआ तुम्हारे हक में। वरना वह तभी बसन्ती के ज़रिए तुम्हारा घर खाली करा लेता। बड़ा ही चालाक आदमी था। उसका काटा पानी नहीं माँग सकता था। मैं तो उसी का मारा आज तक तड़फ रहा हूँ।"

मनोहर दर्द भरा स्वर बनाकर बोला, "आपके साथ क्या किया था उन्होंने मौसा ? ज़रा मैं भी तो सुनूँ।"

मनोहर की बात सुनकर ननका का गला कुछ रुँध गया। वह बोला, "बड़ी पुरानी बात हो गई मनोहर ! लेकिन उसका दर्द अभी तक बना हुआ है। वह चोट उसने मुझ पर ऐसी की कि मैं आज तक सँभल नहीं सका।

मुझे बर्बाद करके रख दिया उसने।

आखिर क्या मिला उसे ?

मैं जवान था उन दिनों और नई-नई शादी करके लाया था। एक दिन किसी बात पर तुम्हारी मौसी से मेरी कहा सुनी हो गई।

उसके बाद उसने तुम्हारी मौसी के ऐसे कान भरे कि वह पगली कुए में कूद पड़ी और फिर मुझे बदनाम करने का जो सिलसिला उसने बनाया तो उससे मेरी हवा इतनी बिगड़ी कि आज तक औरत के लिए तरस रहा हूँ।"

कहते-कहते ननका की जबान रुक गई।

मनोहर बोला, "यह तो बहुत बुरा काम किया उन्होंने। आज तुम्हारी पत्नी होती तो कितनी सेवा करती तुम्हारी ? यों कुत्ते की तरह घर की चौखट पर बैठे-ही-बैठे क्यों दिन काटने पड़ते ?

और फिर पत्नी होती तो बेटे भी होते, बेटियाँ भी होतीं। सब तुम्हें आराम पहुँचाते और तुम्हारा बुढ़ापा आराम से कटता।"

मनोहर ने एक सुन्दर स्वप्न ननका की आँखों में चित्रित कर दिया।

ननका की आँखों में आँसू आ गये। वह बोला "बेटा मनोहर ! रहने दो अब इन बातों को। दिल में दर्द पैदा होता है। रिसालसिंह के बाप ने सचमुच ही मुझे दुनियाँ में कुत्ता बनाकर छोड़ दिया। ऐसे आदमी की भी क्या ज़िन्दगी जो जीवन भर स्त्री के लिए तरसता रहा हो और उसे वह न मिल सकी हो।

लेकिन बेटा ! सब दोष भाग्य का ही है। भाग्य में स्त्री का सुख बदा होता तो वह बदनसीब क्यों कुए में कूद कर अपनी जान गँवा देती ? वह कुएँ में कूद कर अपने प्राणों से तो गई ही, मुझे भी इस ज़िन्दगी के कुए में ऐसा धक्का दे गई कि आज तक उसी में पड़ा डूब और उभर रहा हूँ।"

संध्या को मनोहर ने यह बात मुझे सुनाई तो मैं हँसकर बोली, "पगला है ननका ! इसका ख्याल ग़लत है। बापू न होते तो पुलिस इसे पकड़ कर ले जाती। पुलिस से बापू ने ही इसकी जान बचाई थी और उन्हीं को यह दोषी ठहरा रहा है।

इसका दिमाग़ ठीक नहीं है।"

मेरी बात सुनकर मनोहर बोला, "दिमाग में इसके कोई खराबी नहीं है भाभी ! इसके दिल में आपके प्रति बहुत बड़ी घृणा है, बहुत बड़ा क्रोध है।"

मैं हँसकर बोली, "होने दो बेटा ! इसके क्रोध और इसकी घृणा की

मैं चिंता नहीं करती। यह तो कुचले हुए सर्प के समान है। झल्लाया हुआ है अपने जीवन की ना-कामयाबी पर। इसके पास जो कोई भी जाता है यह उसी को काटता है।

इसकी ज़बान और इसके दिल में किसी का हित नहीं है। आपसी द्वेष और कलह का यह साकार पुतला है। ऐसे गन्दे आदमी से बातें करना भी व्यर्थ है, समय को नष्ट करना है।"

मनोहर बोला, "इसमें कुछ सन्देह नहीं भाभी ! लेकिन यह आदमी है बड़ा खतरनाक। बात ऐसी लच्छेदार करता है कि सुनने वाला समझने लगता है कि इससे बड़ा उसका संसार में और कोई हितैषी नहीं है।"

मैं हँसकर बोली, "यह बात तुम्हारी ठीक है मनोहर ! जब मैं बच्ची थी, तो मैं भी इसे अच्छा आदमी समझती थी, लेकिन एक दिन जब बापू ने मुझे इसकी बातें बतलाईं तो मुझे इससे घृणा हो गई। यह बड़ा नीच व्यक्ति है। तुम क्या करोगे इसकी बातें सुनकर ?

इसने गाँव की कई लड़कियों को गाँव से भगवा दिया था। इसी लिए इसे एकबार बापू ने सरेआम गाँव के लोगों के बीच जूतियाँ लगाई थीं और इसने उनके पैरों पर सिर रख कर कसम खाई थी कि यह भविष्य में ऐसी हरकत नहीं करेगा।

परन्तु बापू के मरने के पश्चात् इसने फिर वही काम जारी कर दिया। इसके पास बड़ा पैसा है बेटा ! आखिर यह कहाँ से आया ? यह सब इन्हीं बदमाशियों से पैदा करता है।

यह बदमाश लोगों का दलाल है। अफ़ीम, गाँजा और चरस भी बेचता है। इसीलिए बदमाश इसे अपनी लूट-पाट का हिस्सा दे जाते हैं। पुलिस के सिपाही भी इसके पास आते-जाते रहते हैं। उन्हें भी इससे भेंट पूजा की सामग्री मिल जाती है।

आज जब तुम पूछने ही लगे तो मैं तुम्हें बतला रही हूँ कि यह इस योग्य व्यक्ति नहीं है जिससे एक क्षण के लिए भी बातें की जायें।"

उस दिन मनोहर ने अपना कान पकड़ा कि वह भविष्य में उपहास के लिए भी कभी ननका के पास खड़ा नहीं होगा।

वह दिन है और आज का दिन है बेटा ! कि मनोहर ने फिर कभी उसकी कोई बात नहीं सुनी।

: १६ :

मनोहर की लड़की की शादी के पश्चात् बस बेटा ! मैं अभी आई थी यहाँ। मनोहर और मनोहर की बहू ने मुझे कभी कोई तकलीफ़ नहीं दी। अपनी औलाद भी इतनी फरमाबरदार नहीं हो सकती जितने ये मेरे लिए रहे हैं। क्या मजाल जो दोनों में से एक ने भी कभी मेरे कहने के विरुद्ध कोई आचरण किया हो।

इन दिनों बेटा ! मनोहर की गाँव में खूब चल रही है। गाँव के सब भले आदमी उसकी इज्जत करते हैं और वे गुण्डे, जिन्होंने उसे पथ-भ्रष्ट किया था, उससे घबराते हैं।

कुछ दिन तो उन बदमाशों ने बहुत सिर उठाया था, परन्तु अब सब सीधे हो गये हैं।

उन दिनों मैंने रिसालसिंह को भी वहीं बुला लिया था मनोहर की मदद को।

रिसालसिंह ने उनमें से दो चार को अपने खेतों में चोरी करते पकड़ लिया और वह ठुकाई की उनकी कि ज़िन्दगी भर याद रहेगी उन्हें।

इस बार मेरी कुछ ऐसी तबियत खराब हुई कि महीनों तक जी ठीक नहीं हुआ। तब मैं यहाँ चली आई और यह सोचकर आई थी कि चाचा जी का इलाज करूँगी।

यहाँ आई तो यह गंगा जी का मेला बीच में आ गया।

उस दिन जब गाँव की गाड़ियाँ गढ़मुक्तेश्वर को जाने लगीं तो मेरा भी मन कर आया गंगास्नान के लिए।

चाचा जी ने बहुत मना किया मुझे लेकिन मेरी ही अक्ल पर कुछ ऐसे पत्थर पड़ गये कि मैंने उनकी बात सुनी ही नहीं।

मैं चली गई तो वह बाद में भी पछताते रहे। चमेली से बोले, 'चमेली यह बसंती इतनी बड़ी हो गई लेकिन इसे खाक भी अक्ल नहीं है। मेरे मना करने पर भी यह गंगा नहाने चली गई। अब देखना वहाँ से अपनी क्या गत बना कर आती है।"

वहाँ से लौटकर मेरी जो दशा हुई, वह तुम देख ही रहे हो बेटा! मनोहर को पता चलेगा तो वह बहुत दुखी होगा।

वह तो आने ही नहीं दे रहा था यहाँ लेकिन वहाँ वैद्य जी की दवा से आराम नहीं हो रहा था, यह बहाना मिल गया मुझे।

मुझे चाचा जी की दवा में कुछ ऐसा विश्वास हो गया है बेटा! कि मैं मुँह में पुड़िया डालते ही समझने लगती हूँ कि आराम हो गया।"

फिर बात बदल कर बुआ जी बोलीं, "लाला! तुमने तो शायद मनोहर को कभी नहीं देखा है।"

मैं बोला, "उनसे भेंट करने का कभी मुझे अवसर नहीं मिला। कभी ऐसा संयोग ही नहीं बना कि मैं और वह यहाँ एक समय में आए हों।

मनोहर मामा जी के लड़के देवेन्द्र की शादी में आने की मेरी बहुत इच्छा थी, परन्तु तब मेरी तबियत इतनी खराब चल रही थी कि आना चाहते हुए भी न आ सका।"

बुआ जी बोलीं, "हाँ तब तो भेंट हो जाती तुम दोनों की। वह तुमसे मिलने का भी बड़ा इच्छुक था। उसने कहीं स्कूल की लायब्रेरी में से तेरी लिखी कोई किताब पढ़ी थी। वह उसे बहुत पसंद आई थी।

तब उसने मुझसे पूछा था, 'क्या यह नाम चमेली के दामाद का ही है? बहुत अच्छी किताब लिखी है। तुम्हारे गाँव का खाका खींच कर रख दिया है और चमेली का तो इसमें इतना सुन्दर चित्र खींचा है कि पढ़कर श्रद्धा हो उठती है उसके प्रति।'

मनोहर की यह बात सुनकर मैंने मनोहर से गर्व के साथ कहा था, "मनोहर ! चमेली का जीवन वास्तव में बड़ा ही आदर्श और त्यागमय जीवन है । त्याग और तपस्या की साकार प्रतिमा है वह । आज के जमाने में ऐसी सती देवियाँ बहुत कम देखने में आती हैं ।

बाप बेटी दोनों आदर्श जीवन व्यतीत कर रहे हैं । एक-दूसरे का सहारा है दोनों ।"

मेरे 'बाप बेटी' कहने पर मनोहर बोला, "लाला ने किताब का नाम ही 'बाप बेटी' रखा है भाभी ! बड़ा प्यारा लिखा है उसने ।"

हम ये बातें कर ही रहे थे कि तभी मेरी दृष्टि रास्ते की ओर गई। रिसालसिंह मामा जी किसी व्यक्ति के साथ आ रहे थे ।

वे दोनों थोड़ी ही देर में घर के अन्दर आ गये ।

मामा जी रिसालसिंह के साथ वाला व्यक्ति दूर से ही बसंती बुआ जी को देखकर चकित सा रह गया । चिन्ता की सलवटें उसके मस्तक पर उभर आईं । वह गम्भीर वाणी में बोला, "भाभी !" और इतना कह कर आँखों में आँसू आ गये ।

उसके 'भाभी' मात्र कहते ही मैं समझ गया कि यही मनोहर हैं ।

बसंती बुआ जी उन्हें देखकर बोलीं, "मनोहर ! तू आ गया । किसी ने बतला दिया होगा तुझे मेरी बीमारी के विषय में ।

तेरी उम्र बहुत लम्बी है बेटा ! मैं और लाला अभी-अभी तेरी ही बातें कर रहे थे ।"

बसंती बुआ जी ने इतनी बातें कहीं, परन्तु उनका ध्यान केवल बसंती बुआ जी के कमज़ोर बदन पर ही टिका हुआ था ।

वह बोले, "भाभी ! इतनी दशा खराब हो गई और मनोहर को आपने इस योग्य भी नहीं समझा कि ज़रा सी सूचना भी भेज देतीं ।" कहकर उनका मन भारीसा हो गया ।

बसंती बुआ जी बोलीं, "मनोहर ! मन भारी न कर । यहाँ मेरी

देखभाल करने वालों की कमी नहीं थी, इसलिए मैंने तुझे परेशान नहीं किया। दोनों घरों के सब लोग इस बुढ़िया के पीछे अपने सब काम-काज बन्द करके बैठ जाओ, यह नादानी नहीं तो और क्या है ?

अब यही गनीमत समझो कि किसी तरह तुम्हारी भाभी बच गई।"

मनोहर मेरे पास ही माथे पर हाथ रखकर खाट पर बैठ गया। वह कुछ ठहर कर बोला, "अब कैसी तबियत है भाभी ?"

बसंती बुआजी मुस्करा कर बोलीं, "आज तो मैंने चाय पी थी मनोहर ! अब बुखार नहीं है। कमज़ोरी है, सो धीरे-धीरे ठीक हो जाएगी।"

यह सुनकर मनोहर ने तनिक संतोष की साँस ली। वह जब बाहर दगड़े में रिसालसिंह के साथ आ रहे थे तो उनका चेहरा इतना गमगीन नहीं था। शायद उन्हें ध्यान ही नहीं था कि बसंती बुआजी की तबियत इतनी बिगड़ चुकी है। परन्तु अन्दर आकर जो उन्होंने इनकी सूरत देखी तो उनका कलेजा धक्क से रह गया। उनके हृदय पर बड़े ज़ोर का आघात हुआ।

बसंती बुआ जी मेरी ओर को संकेत करके उनसे बोलीं, "मनोहर ! यह है वह लाला जिसकी लिखी 'बाप बेटी' किताब तूने पढ़ी थी। तू कह रहा था न एक दिन इससे मिलने को।

देख आज मेरी बीमारी ने कैसा शुभ दिन ला दिया कि तुम दोनों की भेंट हो गई।"

उन्होंने मेरी ओर बड़े स्नेह से देखा और बोले, "लाला ! किताब खूब लिखी है तुमने। ऐसी किताबें लिखने की ज़रूरत है। ऐसी आदर्श देवियों के जीवन पर रोशनी डालनी ही चाहिए।

यूँ नाचिल मेरी नज़रों से बहुत गुज़रे हैं, लेकिन जो अपनापन मुझे इसमें पढ़ने को मिला वह उनमें नहीं था। उन्हें पढ़ा तो लगा कि मैं किसी दूसरे की कहानी पढ़ रहा हूँ और इसे पढ़ा तो मालूम दिया कि मैं अपने ही जीवन कहानी दुहरा रहा हूँ।

उनकी बात सुनकर बसंती बुआ जी बोलीं, "लाला तो ये ही किस्से

कहानियाँ लिखता रहता है बस। इसने एक किताब लिखी है 'झुनियाँ की शादी।' जब इसने नाम बतलाया तो मुझे बहुत हँसी आई।"

बुआ जी की बात सुनकर मैं मुस्करा कर बोला, "बुआ जी! जब 'झुनियाँ की शादी' नाम सुनकर आपको इतनी हँसी आई तो फिर जब आपके हाथों में मेरी 'बसंती बुआ जी' पुस्तक आएगी तब कितनी हँसी आएगी आपको ?"

मेरी बात सुनकर सब लोग खिलखिला कर हँस पड़े।

बुआ जी बोलीं, "बेटा! तुम्हारी बसंती बुआ जी के अन्दर ऐसी क्या विशेष बात है जो तुम उस पर कोई पुस्तक लिखो। भाग्य और दुर्भाग्य से लड़ते-झगड़ते मेरा सारा जीवन निकल गया, सो यह सभी के साथ लगा हुआ है।"

मनोहर फूफा जी को मुझसे मिलकर बहुत प्रसन्नता हुई और मैं भी अपने उपन्यास के इस पात्र से भेंट कर सका।

इसके पश्चात् बहुत देर तक उनसे बातें होती रहीं। वह अपने गाँव की वर्तमान दशा के विषय में मुझे बतलाते रहे।

मैंने उनसे प्रश्न किया, "क्यों फूफा जी! जिस दिन से देश स्वतन्त्र हुआ है, उस दिन से आपके गाँव की दशा में क्या परिवर्तन हुआ है ?"

मेरा प्रश्न सुनकर वह बोले, "परिवर्तन बहुत हुआ है लाला! आदमी जैसे अब हैं वैसे पहले भी थे, परन्तु उनके रूप बदल गये हैं।"

मैंने उत्सुकता पूर्वक कहा, "आपका मतलब मैं नहीं समझ सका।"

वह हँसकर बोले, "नहीं समझे, तो यों समझो। गुण्डे पहले भी थे और आज भी हैं। पहले वे ज़मीदारों के संकेतों पर नाचते थे और अब वे उन्हें नचाते हैं।

इन लोगों का गाँवों में बड़ा आतंक है। पहले ये पुलिस से डरते थे, परन्तु अब डरते नहीं।

अनाज पर तेजी आजाने से कुछ पैसा गाँव वालों के पास अवश्य आया है। इसी से हर गाँव में कुछ पक्के मकान बन गये हैं।

परन्तु जो सबसे बड़ी गिरावट इस बीच में हुई है वह है आचरण की भ्रष्टता, धोखे-बाज़ी और मक्कारी की अधिकता।"

मैं गम्भीरतापूर्वक बोला, "आपका अनुमान ठीक है। लोगों का चरित्र गिर रहा है। भ्रष्टाचार ज़ोरों पर है और उसका प्रभाव आम लोगों के जीवन पर पड़ रहा है।"

संध्या धीरे-धीरे ढल आई थी।

मैं और बाँकेबिहारी यहाँ से उठकर घेर और फिर बाग की ओर निकल गये। वहाँ कुछ देर कुए की मन पर बैठे रहे।

बुआ जी की पूरी कहानी इस समय मेरे मस्तिष्क में भरी हुई थी। बाँकेबिहारी ने कुछ प्रश्न भी किये, परन्तु मैंने कोई उत्तर नहीं दिया।

यहाँ से हम दोनों फिर घर लौट आये।

: १७ :

आज घर का वातावरण शान्तिपूर्ण था। कई दिन से बसन्ती बुआ जी की बीमारी काले बादल की तरह घर पर मण्डराती रही। दौड़-भाग करके दवा दारू करने वाले यही सोचते रहे कि यह बादल बरस कर रहेगा या ऊपर से उतर जाएगा।

आज लग रहा था कि वह काला बादल खूब गरजा, खूब किड़-किड़ाया, खूब बिजली चमकी, परन्तु ओले नहीं गिरे, हमारे घरों के ऊपर से उतर कर चला गया।

कल जैसे बसन्ती जीजी के अतिरिक्त अन्य कोई विषय बातें करने का ही नहीं था, आज वैसी दशा नहीं थी।

आज सबके मस्तिष्क साफ थे। हमारे और बसन्ती जीजी के घरों में से यह चिन्ता समाप्त हो गई थी कि अब बसन्ती जीजी के प्राणों पर किसी प्रकार का संकट है।

माजी हमें भोजन कराती हुई बाँकेबिहारी की ओर देख कर मुझ से बोलीं, "लाला ! तुम इन्हें यहाँ लाये तो ऐसे समय में लाये जब इनकी कुछ खातिर भी न हो सकी।

हम सब बसन्ती के झमेले में लगे रहे और तुम लोगों के लिए ठीक से भोजन का भी प्रबन्ध नहीं हो सका।"

बाँके बिहारी बोला, "भोजन हमने बहुत आनन्द पूर्वक किया माजी ! हमें कोई भी तकलीफ नहीं हुई।"

राजबाला बोली, "बेचारा बाँके बिहारी तो यहाँ कल से सिनेमा के ही लिए परेशान हो गया होगा। मित्रों की चौकड़ी के साथ होटलों की गुलछर्रेबाजी भी यहाँ नहीं है। कैनाटप्लेस और चाँदनी चौक तो क्या नई सड़क, दरीबा, चावड़ी बाज़ार जैसी रौनक भी नहीं है।

यहाँ बाँके बिहारी का क्या मन लगा होगा ? इनका कहा न टालने को बेचारा चल दिया होगा और यहाँ आकर फँस गया कई दिन के लिए।"

राजबाला की बात सुनकर बाँकेबिहारी आँखें तरेर कर बोला, "यह बात नहीं है भाभी जी ! आप पूछ सकती हैं शर्मा जी से कि मैं किसी दबाव से नहीं आया।

मैंने जीवन में कभी गाँव देखा नहीं था। शर्मा जी ने ज्यों ही आपका पत्र पढ़ा तो यह यहाँ आने के लिए उद्यत हो गये।

यह मुझसे बोले, 'बाँकेबिहारी ! चलो तुम्हें भी प्रेम की देवी के दर्शन करा लाऊँ।'

तब इन्होंने मुझे बसंती जीजी के विषय में कुछ बातें बतलाईं।

बातें मुझे इतनी आकर्षक लगीं कि मैं चलने को उद्यत हो गया।"

मैं मुस्करा कर बोला, "यह बात तो बाँके बिहारी की ठीक है राजबाला।

यह आया स्वेच्छा से ही है और जब से आया है इसका मन भी खूब लग रहा है। इसे गाँव बहुत पसन्द आया है।

मेरी बात सुनकर राजबाला मुस्करा कर बोली, "बाँकेबिहारी को गाँव का ऐसा क्या पसंद आ गया ? बेचारे को आपकी हाँ में हाँ मिलानी पड़ रही होगी।

और आपको मैं जानती ही हूँ कि आप हर चीज़ पर गाँव को लादे बिना चैन नहीं लेते।"

मैं मुस्करा कर बाँके बिहारी से बोला, "देखा बाँके बिहारी ! तुम्हारी भाभी को गाँव पसन्द नहीं है और तुम्हें गाँव बहुत पसंद आ गया। इसका अर्थ यही है कि हर इन्सान अपनी वर्तमान स्थिति से असंतुष्ट है। उसे अपने से भिन्न स्थिति आकर्षक लगती है। किसी वस्तु के प्रति आकर्षण की मात्रा उस समय तक बढ़ती है जब तक वह प्राप्त नहीं होती। प्राप्त होने के पश्चात उसकी साधारण स्थिति बन जाती है और आकर्षण धीरे-धीरे घटना प्रारम्भ हो जाता है।"

ये बातें चल ही रही थीं कि तभी रिसालसिंह मामा जी मनोहर फूफा जी के साथ वहाँ आ गये।

कुछ देर तक इधर-उधर की बातों के पश्चात मनोहर फूफा जी बोले, "लाला तुमने गाँव की वर्तमान दशा के विषय में संध्या को मुझसे पूछा था। उस समय मैं पूरी बातें बतला न सका तुम्हें।

मैं सोचता रहा बहुत देर तक परन्तु अब गाँव का, विशेष रूप से अपने गाँव का, सही नक्शा मेरे मस्तिष्क पर उतर आया है। तुम कहो तो सुनाऊँ तुम्हें।"

मैं मुस्करा कर बोला, "अवश्य सुनाइये फूफा जी ! देखें आप अपने गाँव की कितनी गहराई में उतर पाये हैं ?"

मेरी यह बात सुनकर मनोहर फूफा जी बोले, "गहराई क्या है गाँव में लाला ? सब स्पष्ट ही है गाँव में तो।"

मुझे हँसी आ गई उनकी बात सुनकर। मैं बोला, "गाँव की गहरी खन्दकों में डुबकियाँ लगाने के पश्चात भी आप यह कह रहे हैं कि सब स्पष्ट ही है गाँव में, तो मुझे सुनकर आश्चर्य हो रहा है।

परन्तु सुनाइये आपके मस्तिष्क पर क्या नक्शा बना है गाँव का ?"

मनोहर फूफा जी ज़रा सँभल कर बोले, "बेटा ! गाँव अब बिलकुल रहने की जगह नहीं रहे। गाँवों का वातावरण इतना गंदा और स्वार्थ-पूर्ण हो गया है कि कभी-कभी दम घुटने लगता है, परन्तु क्योंकि किसी और जगह जाने का कोई सहारा नहीं है, इसलिए उसी घुटन में रहना पड़ रहा है।"

मैंने पूछा, "घुटन किस बात की है फूफा जी ?"

वह बोले, "घुटन यह है लाला! कि विश्वास के योग्य कोई आदमी नहीं रहा। आज हर व्यक्ति चौकन्ना है और दूसरों पर हाथ साफ करने के फिराक में लगा हुआ है।

कुछ लोगों का तो काम ही यही है कि वे पारस्परिक फूट का गाँव के वातावरण में बीज बोते रहें। इसे वे अपनी राजनीति कहते हैं। इनके साथ वे लीडर लोग भी गठबन्धन किये हुए हैं जिन्हें लाख प्रयत्न करने पर भी स्वतंत्रता का कोई विशेष फल प्राप्त नहीं हो सका। इनके जीवन में बड़ी भारी जलन है।"

मैं मुस्करा कर बोला, "जलन होने का कारण है फूफा जी ! आखिर देश की स्वतन्त्रता के संग्राम के ये कभी सैनिक रहे हैं और उन्हें कांग्रेस ने रिटायर किया और युद्ध जीत लिया तो कोई पेंशन तो उन्हें मिलनी ही चाहिए थी। अपनी सेना के बहुत से सिपाही, जिन्होंने अंग्रेज़ों की सेवा की और देश को गुलाम बनाये रखने के लिए अपना जीवन लगाया, वे जब रिटायर होते हैं तो उन्हें पेंशन मिलती है। देश के रुपए में से मिलती है।

इन बेचारों ने बिना वेतन जेलखानों में सजाएँ भुगतीं। देश की स्वतंत्रता का संग्राम जीता और फिर इन्हें एकदम रिटायर हो जाना पड़ा।

इनके जेलों के साथी अपनी जेल-यात्राओं के लाभ उठा गये और

ये बेचारे तरसते ही रहे। इन्हें कोई सरकारी परमिट भी नहीं मिल सका। फिर आखिर क्या करें ये ?"

मेरी बात सुनकर मनोहर फूफा जी बहुत हँसे। वह बोले, "एक और मज़ेदार बात सुनाऊँ तुम्हें लाला !

आजकल हमारे गाँव का जो प्रधान है वह किसी ज़माने में गाँव का सबसे बड़ा गुण्डा था। उसने हमारे गाँव के लोगों को बहुत लुटवाया और पिटवाया था। सरकारी दलाल था वह अंग्रेज़ी राज्य के दिनों में और इन लीडरों पर खूब बेंतें रुलवाई थीं उसने।

परन्तु अब इन दोनों का बड़ा भारी मेल है। दोनों एक थाली में बैठकर भोजन करते हैं।"

मुझे हँसी आ गई मनोहर फूफा जी की बात सुनकर। मैं हँसता-हँसता ही बोला, "इसका मतलब यह है कि अब आपने अपने गाँव के लोगों का सही विश्लेषण कर लिया है। अब वह पहली बात नहीं रही कि कोई भी लल्लू-पंजू आकर आप पर छापा मार सके।"

मेरी बात सुनकर मनोहर फूफा जी मुस्कराकर बोले, "मालूम देता है तुम्हें भाभी ने मेरा किस्सा सुना दिया है। उस समय सचमुच मुझे अक्ल नहीं थी लाला ! और इन लोगों की बातों के चक्कर में मैं आ गया था।

यह लीडर महोदय और गाँव के सरपंच ही मुझे बर्बाद करने वालों में से थे।

इन दोनों ने मिलकर मुझे समझाया कि मुझे भाभी की लूट से अपने घर को बचाना चाहिए। लाला ! क्या कहूँ तुम से ? वह तो भय्या और भाभी ही देवता और देवी निकले कि अपना सब कुछ मुझे छोड़ दिया, वरना उस समय इन लोगों ने मेरा दिमाग इतना खराब कर दिया था कि यदि भय्या ज़मीन लेने के लिए ज़रा भी ज़िद करते तो ये लोग मेरी और उनकी फौजदारी करा देते।

मैं बिल्कुल पागल हो गया था उस समय। मुझे कुछ सूझ ही नहीं रहा था। लाला ! बेईमानी मेरे मस्तिष्क में ऐसी बुरी तरह से भर गई थी कि सचाई की किसी बात के लिए उसमें स्थान ही बाकी नहीं रह गया था।

मस्तिष्क तर्क भी करता था तो तर्क का फल भी यही निकलता था कि मैं जो कुछ कर रहा था, सही कर रहा था। मुझे इस बात का संतोष था कि मैं पहल नहीं कर रहा था। पहल करने वाली मैं अपनी भाभी को ही समझ रहा था और इनके प्रति मेरे मन में बड़ी घृणा उत्पन्न हो गई थी।

इतनी घृणा, इतना रोष, इतना पागलपन, इतनी निर्दयता कि मेरे लाडले भतीजे और भतीजी मेरी आँखों के सामने जमीन पर लेट गये और मैंने उफ् तक न की, मेरा सगा भाई मुझसे बिछड़ गया और मैंने संतोष की साँस ली कि मेरा शत्रु समाप्त हो गया।

मैं नीचता की चरम सीमा पर पहुँच गया था लाला ! यह सब इन्हीं दो महोदयों की कुसंगति का प्रभाव था।"

मैंने बात की दिशा बदल कर पूछा, "अच्छा फूफा जी तनिक यह तो बतलाइये कि इन लीडर महोदय की आर्थिक दशा क्या है ?"

फूफा जी बोले, "आर्थिक दशा पहले ही क्या थी इसकी ? यह कोई लीडर-वीडर नहीं रहा कभी। अपनी भाभी की नाक काट कर जेल चला गया था। लेकिन जब जेल से निकला तो इसने भी अन्य कांग्रेसियों के साथ मिलकर भारत माता की जै के नारे लगाने प्रारम्भ कर दिये।

कांग्रेस के आन्दोलन में इसने खूब चन्दा बटोरा और अपना कच्चा झोंपड़ा एक पक्की ईंटों के मकान में बदल दिया। लेकिन उस चन्दे से इसे अधिक आय नहीं हुई। इसका भाग्य तो अब खुला है जब से देश स्वतंत्र हुआ है।"

मैं हँसकर बोला, "स्वतंत्र भारत में तो उस बेचारे का भाग्य

खुलना ही चाहिए था फूफा जी ! आखिर उसी के लिए तो वह इतने दिन से प्रयत्नशील था।

परन्तु दशा कैसे सुधरी ज़रा यह भी तो सुनूँ ।"

फूफा जी बोले, "हमारे पंच महोदय पुलिस के पूर्व परिचित थे। उन्होंने इन लीडर महोदय का थाने के दारोगा जी से परिचय कराया। साथ ही यह भी कहा,—'हम लोग आप से बाहर नहीं हैं दारोगा जी ! यह हमारे गाँव के लीडर हैं। मिनिस्टरों के साथ-साथ जेल काटी है इन्होंने। इनका भी ध्यान रखना जरा।'

इस पर दरोगा जी मुस्करा कर बोले, 'ध्यान मुझे क्या रखना है सरपंच ! ध्यान तो तुझे ही रखना है। मैं तो अपने दस्तूर के रुपये ही लेता हूँ और उन्हें मैं छोड़ नहीं सकता। उससे ऊपर तुम एक रहो या दो, यह तुम जानो।'

बस लाला ! जब से यह राज्य आया है तब से सरपंच और इस लीडर महोदय ने ऐसी दलाली मारी है कि दोनों ने शानदार कोठियाँ बना ली गाँव में।"

मैं हँसकर बोला, "रौनक बढ़ा दी आपके गाँव की। थोड़ा-थोड़ा देने में किसी को कष्ट भी नहीं हुआ और दो इमारतें बनकर तय्यार हो गईं गाँव में।"

फूफा जी बोले, "लाला ! इन दोनों ने गाँव पर बड़ा अत्याचार किया हुआ है। गाँव में कोई बेवा हो जाये तो ये दोनों उस पर ऐसा जाल फैलाते हैं कि उसके सरताज बन बैठते हैं और एक दो वर्ष में ही उसे खा-चाट कर बराबर कर देते हैं।

एक ब्राह्मणी की पचास बीघे ज़मीन ये दोनों बदमाश जीम गए। वह बेचारी बिलखती रह गई और पगली हो गई अन्त में। गाँव के गलिहारों में इन्हें गालियाँ बकती फिरती रहती है।

इन लोगों ने आतंक जमाया हुआ है गाँव पर। किसी नाबालिग का

बाप मर जाय तो ये तुरन्त जाकर उसके बाप बन जाते हैं और उसे ऐसे मार्ग पर लगाते हैं कि वह अपना सर्वनाश कर ले।

मेरे साथ इन्होंने यही किया था।"

मैं बोला, "जोड़ी खूब बनी है दोनों की।"

"जोड़ी तो सचमुच खूब बनी है लाला! लेकिन अब लोगों का विरोध भी इनसे बहुत बढ़ता जा रहा है। लोग यह समझने लगे हैं कि ये दोनों मिलकर गाँव को लूट और लुटवा रहे हैं।

लेकिन लाला! इससे जो सबसे बड़ी हानि हुई है वह यह है कि लोगों का कांग्रेस से विश्वास उठता जा रहा है। जैसे ये लुच्चे हैं लोग-बागों को विश्वास होता जा रहा है कि वैसे ही बड़े-बड़े हैं।

लोग कहते हैं कि ऊपर के लोग इन्हीं की आँखों से गाँव भर को देखते हैं। इनके दुर्व्यवहार से गाँव के लोगों के दिलों में धीरे-धीरे जो ज्वाला दहकती जा रही है उसकी गर्मी अभी तक ऊपर वालों के पास तक नहीं पहुँची है।" मनोहर फूफा जी ने दर्द भरे स्वर में कहा।

मैं हँसकर बोला, "फूफा जी! ऐसी गर्मी की ऊपर के लोग क्या चिन्ता करते हैं? उनके पास आग बुझाने की मोटरों की कमी नहीं है। वे विदेशों से काफी मँगा ली हैं उन्होंने और अपने बैठने-उठने के लिए उन्होंने कूलर लगवा लिये हैं।

उन कूलरों की ठंडक में तुम्हारी यह गर्मी कैसे प्रवेश कर सकती है? तुम्हारी गर्मी की लपटें उनके पास तब तक पहुँचेंगी जब तुम्हारे गाँव भक्क-भक्क करके जलने लगेंगे और वह ज्वाला देश भर के वायु-मण्डल में भक्क-भक्क कर उठेगी।"

मेरी बात सुनकर मनोहर फूफा जी बोले, "लेकिन यह होगी कैसे लाला! लोगों में आपस में मेल कतन नहीं है। पारस्परिक द्वेष की मात्रा बढ़ रही है।

जो नई पीढ़ी के बच्चे निकल रहे हैं उनकी तो दशा ही बड़ी

विचित्र होती जा रही है। धर्म-कर्म से तो किसी का कोई सम्बन्ध रहा ही नहीं, बड़े-छोटे का व्यवहार भी जाता रहा। न किसी को राम-राम और न श्याम-श्याम। सीधे जानवरों की तरह निकले चले जाते हैं।

थोड़ा पढ़-लिख कर बाबू बने फिरते हैं। कम्बख्त अपने घरों के काम-काज के भी नहीं रहे। दिन भर पागलों की तरह चक्कर लगाते हैं। पान खाने लगे हैं, बीड़ियाँ पीने लगे हैं, सिनेमाओं का शौक हो गया है। सिरों पर पट्ठे बढ़ा लिये हैं तो उनके लिए भी तेल कंघा चाहिए। ये सब ज़रूरतें तो उनकी बढ़ गई हैं और आमदनी के नाम सिफर है कोरा। भगवान् ही जाने इनका क्या बनेगा? इनके माँ-बाप भी परेशान हैं इनसे और सारा गाँव परेशान है।"

मैंने पूछा, "सारा गाँव क्यों परेशान है फूफा जी?"

"परेशानी तो हो ही गई यह लाला! जब खर्च इनके बढ़ गये और काम ये कुछ करते नहीं तो आखिर करें क्या? ऐसी हालत में सिवाय बदमाशियों के और सूझता ही क्या है?

कुछ चोरी-चकोरियों में हिस्सा लेने लगे, कुछ छोटी-मोटी डकैतियाँ डालने लगे, बस ये ही काम हैं इनके।" उन्होंने कहा।

मैंने पूछा, "इनके माँ-बाप नहीं रोकते इन्हें।"

मेरी बात सुनकर फूफा जी खूब हँसे। वह बोले, "लाला! आदमी कोई जानवर नहीं होता कि उसके गले में घुंडा डालकर उन्हें खूंटे से बाँध दिया जाय। और माँ-बाप किसके चाहते हैं कि उनके बच्चे गलत संगति में पड़ें? परन्तु रोकें भी कैसे उन्हें? उनके खर्चों के लिए रुपया कहाँ से लायें? न जाने किस प्रकार अपने परिवारों को पाल रहे हैं सब लोग? अपने पेट काटकर इन्हें चार अक्षर पढ़ाये, तो इसलिए पढ़ाये थे कि ये पढ़-लिखकर नौकरी करेंगे और कुछ कमाकर घर को लायेंगे, जिससे उन्हें अपने घर-खर्च चलाने में सहायता मिलेगी। इसके विपरीत हुआ यह कि ये लड़के घर के काम-काज के योग्य भी नहीं रहे और नौकरियाँ कहीं मिलती नहीं।

कहाँ रखी हैं इतनी नौकरियाँ ? सरकार क्या सारी दुनियाँ को नौकरियाँ दे सकती है ?"

मनोहर फूफा जी की बात सुनकर मैं बोला, "सरकार सब को नौकरियाँ नहीं दे सकती, आपका यह कहना मैं मानता हूँ फूफा जी ! परन्तु सरकार इस पढ़ाई को तो बन्द कर सकती है कि जिसका लक्ष केवल नौकरियाँ करना है। देश की भावी सन्तति को इस प्रकार लक्ष विहीन शिक्षा देना भी तो गलत है।"

इसके पश्चात् फूफा जी चले गये और हम लोग सब अपनी-अपनी चा रपाइयों पर लेट गये।

: १८ :

गत रात्रि को हम लोग ठीक से सो नहीं सके थे, इसलिए आज बहुत मीठी नींद आई। मनोहर फूफा जी के जाते ही मेरी आँखें झँप गई।

चारों ओर सन्नाटा छा गया।

कल बाँकेबिहारी हम सब के जागते ही सो गया था, इसलिए गाँव के वायुमण्डल की निस्तब्धता वह अनुभव नहीं कर सका था।

आज हम सब सो गये और वह न सो सका।

वह मुझे छूता हुआ बोला, "शर्मा जी ? क्या सो गये आप ?"

मैंने जगकर कहा, "हाँ ! बाँकेबिहारी ! क्या बात है ? तुम सोये नहीं अभी ?"

बाँकेबिहारी बोला, "मुझे नींद नहीं आई शर्मा जी ! मैंने सोने का प्रयास भी किया परन्तु सो नहीं सका ?"

मैंने कहा, "क्यों ?"

बाँकेबिहारी बोला, "आपकी बसंती बुआ जी ने नहीं सोने दिया।"

मुझे हार्दिक प्रसन्नता हुई यह सुनकर। बसंती बुआ जी का यह चरित्र जिसने मुझ पर अपना प्रभाव डाला, उसने बाँकेबिहारी की भावना और उसके मस्तिष्क में भी प्रवेश किया, यह जानकर आत्मिक आनन्द की प्राप्ति हुई।

मैं सचेत होकर बोला, "बसंती बुआ जी ने तुम्हारी नींद छीन ली बाँकेबिहारी !"

"बिलकुल छीन ली शर्मा जी !"

आप सब सो गये तो मैं यहाँ की निस्तब्धता का आनन्द ले रहा था। लेटा-लेटा आकाश के तारों की झमझमाहट को देख रहा था।

आपके इस नीम के वृक्ष और इसकी पत्तियों के बीच से झाँकने वाले चाँद को देख रहा था।

मैं गाँव की वर्तमान दशा को देख रहा था, यहाँ के रहने वालों को देख रहा था और रहने वालों की जो बातें सुनीं थीं उन्हें देख रहा था।

यह देखते-देखते मैंने देखा कि अभी कुछ देर पहले जो कुछ भी मैंने देखा वह सब कुछ भी नहीं था। एक बागीचा था और उसमें बहुत प्रकार के फूल खिले थे।

मैं बागीचे में घूम रहा था। कुछ देर अकेला ही घूमता रहा। फिर मैंने एक देवी को घूमते देखा। मैं अनायास ही उनकी ओर बढ़ गया।

उनके निकट पहुँचा तो वह मुझे देखकर मुस्कराती हुई बोलीं, "यह बागीचा देखा तुमने बाँकेबिहारी !"

मैं बोला, "इसमें तो वास्तव में बड़े सुन्दर पुष्प खिले हैं बुआ जी !"

वह खिलखिला कर हँस पड़ीं मेरी बात सुनकर और बोलीं, "बेटा ! इन फूलों की जड़ों में काँटे भी हैं, परन्तु अच्छा यही है कि फूल ऊपर हैं और काँटे नीचे।

ये दुनियाँ के काँटे जब तक फूलों के नीचे दबे रहेंगे तभी तक धरम धोरा रहता है बेटा ! और जब ये फूलों पर छा जाते हैं तो दुनियाँ उजड़ने लगती है। जीवन की सुगन्धि नष्ट हो जाती है और मानव-जीवन की कोमलता नष्ट होकर काँटे की तरह एक दूसरे में गुभ जाने की भावना पैदा हो जाती है।"

मैं सुनता रहा बुआ जी की बातें और देखता रहा उनके रूप-सौन्दर्य को। वह बहुत सुन्दर लग रही थीं मुझे धर्मा जी ! बिला किसी बनाव-शृंगार के ही उनका बदन दमदमा रहा था। उनका रूप मेरे नेत्रों के मार्ग से मेरे हृदय में प्रविष्ट हो गया था।

मैं एक टक देख रहा था उनकी ओर।

वह फिर बोलीं, "बेटा ! यह बागीचा, ये फूल और ये काँटे, बस यही तो है सारी दुनियाँ। इसमें फूल बीनने वाला आता है तो फूलों से अपनी डलिया भर लेता है, काँटे इकट्ठे करने वाला आता है तो काँटों को तोड़-तोड़ कर ढेर लगा लेता है।

अपना-अपना मन है अपनी-अपनी प्रवृत्ति है। किसी को काँटे अच्छे लगते हैं और किसी को फूल।"

मैंने हँसकर पूछा, "क्या काँटे भी अच्छे लगते हैं कुछ लोगों को बुआ जी ?"

वह बोली, "अवश्य लगते हैं बेटा ! और इन काँटों का उपयोग भी है। इनमें बड़ी शक्ति है। यह शक्ति भले काम में लगे तो परिणाम भला होगा और बुरे काम में लगे तो कुपरिणाम निकलेगा। यह प्रयोग की बात है।"

इसके बाद वह मुझसे दूर चली गईं। दूर क्षितिज के पास मैंने उन्हें जाते देखा।

मैं रोकना चाहते हुए भी रोक न सका उन्हें।

बस तभी मेरी आँखें खुल गईं। मैंने चारों ओर देखा, सब सो रहे थे। चारों ओर निस्तब्धता थी।

मैं कुछ देर सोचता रहा कि आपको न जगाऊँ परन्तु पता नहीं क्यों मुझे भय लग रहा था। मेरा दिल घबराने लगा था। मेरे कानों में कुछ भयानक स्वर गूँजने लगा था।

तब घबराकर मैंने आपको जगाया।"

बाँकेबिहारी की बात सुनकर मेरे मन में भी कुछ उथल-पुथल सी पैदा हो गई। मैं उठकर खाट पर बैठ गया।

मैंने पूछा, "तुम्हें अब तो भय नहीं लग रहा ?"

"भय तो नहीं लग रहा शर्मा जी ! परन्तु बसन्ती बुआ जी का वह मुझे छोड़कर चला जाता हुआ रूप अभी तक भी मेरी पुतलियों में प्रतिमाकार खड़ा है।"

बाँके बिहारी यह कह ही रहा था कि तभी गलिहारे में मैंने किसी के पैरों की आवाज़ सुनी।

मैं और चौकन्ना सा हो गया।

तभी मैंने देखा कि रिसालसिंह मामा जी लपके चले आ रहे थे। उन्हें देखकर मैं खाट से खड़ा हो गया।

उन्होंने घर की चौखट पर खड़े होकर भाजी को आवाज़ दी "चमेली चमेली।"

माजी ने उनकी पहली आवाज़ पर ही दरवाजा खोल दिया।

मैं और बाँके बिहारी भी उनके निकट पहुँच गये।

रिसालसिंह बोला, "चमेली ज़रा हकीम जी को जगा दे। बसन्ती की तबियत एक दम खराब हो गई।"

माजी घबरा कर बोलीं, "क्यों क्या हो गया बसन्ती को ?"

मामा जी रिसालसिंह बोले, "चमेली ! जल्दी करो। बसन्ती की दशा एकदम बहुत खराब हो गई।"

माजी ने धीरे से नाना जी को जगाया और हम सब बसन्ती बुआ जी की ओर चल दिये।

नाना जी ने आगे बढ़कर बुआ जी की नब्ज देखी। नब्ज़ बहुत मंदी पड़ चुकी की। मैंने निराशा को नाना जी के चेहरे पर दौड़ते हुए देखा तो समझ लिया कि अब बुआजी में कुछ शेष नहीं है।

उसके पाँच मिनट बाद ही बुआ जी ने शरीर त्याग दिया। घर भर रोने की ध्वनि से भर गया।

मैं सिर नीचा किये धीरे से बाहर निकल आया।

बाँकेबिहारी भी मेरे साथ-साथ बाहर आ गया।

मैं बोला, "बाँकेबिहारी ! आज एक पवित्र आत्मा इस संसार से उठ गई। बसन्ती बुआ जी से मैंने जब भी जीवन में बातें की हैं तो मुझे प्रेरणा मिली है। कर्त्तव्य और त्याग का अनुपम संगम थीं बुआ जी। प्रेम की परम सुन्दर मूर्त्ति थीं, स्नेह का लहराता हुआ सागर थीं।

आज मुझे यहाँ खड़े-खड़े लग रहा है कि जैसे प्रेम का बहता हुआ स्रोत यकायक सूख गया। जीवन का हरा-भरा वृक्ष जलकर राख हो गया। उस पर आराम से बसेरा लेने वाले पक्षी उसके चारों ओर खड़े रो रहे हैं। ये सब उस प्यार के लिए रो रहे हैं जो इन्हें इस हरे-भरे वृक्ष ने जीवन भर प्रदान किया है।

अब तुम बतलाओ बाँके बिहारी ! इस प्रेम में तुम्हारे सेक्स का भी क्या कहीं कोई स्थान तुम्हें दिखलाई दे रहा है ?"

बाँकेबिहारी का मन बहुत उदास था। वह बोला, "शर्मा जी ! प्रेम वास्तव में सेक्स से ऊपर की वस्तु है। बसन्ती बुआ जी की कहानी ने मेरी विचारधारा को ही बदल दिया। मैं मनुष्य के जीवन में जिस दिशा से प्रविष्ट होने का प्रयास कर रहा था, अब देख रहा हूँ कि वह दिशा गलत थी।"

बसन्ती बुआ जी की अर्थी के तीन डंडे रिसालसिंह, मानसिंह और

मनोहर फूफा जी ने पकड़े तो मैंने आगे बढ़कर चौथा डंडा सम्भाल लिया।

'राम नाम सत्य है, सत्य बोलो गत्त है' की ध्वनि वहाँ के वायुमंडल में गूँज उठी।

अर्थी गाँव के गलिहारे से निकल कर बाहर दगड़े में आ गई।

मुझे लग रहा था कि अर्थी पर मैं उस सूखे हुए पुष्प को उठाये लिए जा रहा हूँ जिसने अपनी सुगन्धि से देश के वातावरण को जीवन भर महँकाया है।

मैं इसी ध्यान में मग्न आगे बढ़ रहा था कि तभी किसी व्यक्ति ने मेरे पास आकर अर्थी का वह डंडा सम्भाल लिया जिसे मैं पकड़े हुए था और मैं एक ओर हो गया।

'राम-नाम सत्य है' की ध्वनि मेरे कानों में पड़ रही थी।

वसन्ती बुआ जी की अर्थी के साथ मैंने पीछे घूम कर देखा तो काफ़ी लोग थे गाँव के।

अर्थी आगे बढ़ गई। मेरे पैर थके से हो गये थे। मैं बाँके बिहारी से बोला, "बाँके बिहारी ! मेरी तबियत गिर रही है। मुझ से चला नहीं जा रहा अर्थी के साथ।"

मेरा यह दूसरा अवसर था जीवन का जब मेरे किसी ऐसे प्रिय व्यक्ति ने मेरी आँखों के सामने दम तोड़ा था और मुझे उसकी अर्थी के साथ चलना पड़ रहा था।

तभी मैंने देखा कि नाना जी मेरे पास आ गये। वह मेरी दशा देखकर बोले, "लाला ! तुम घर चलो ! बस, हो गया जो होना था। वसन्ती हमें छोड़कर चली गई। वह अब नहीं लौटेगी।"

मैं किसी तरह अपने को सम्भाल कर घर तक ले आया। परन्तु पैर मेरे लड़खड़ा रहे थे।

मेरी आँखों का जल आँखों में ही सूख गया था। आँखें भारी हो गई थीं।

मैं घर आ कर खाट पर लेट गया।

माजी ने मेरे पास आकर चिन्तित स्वर में पूछा, "कैसा जी है लाला ?"

मैं बोला, "ठीक हो जाएगा माजी ! यूं ही कुछ घबरा सा गया दिल। बुआ जी आखिर छोड़कर चली ही गई हमें।"

तभी राजबाला भी मेरे पास आ गई। दिल उसका भी डूबा सा जा रहा था बुआ जी की मृत्यु की गहरे अन्धकार में, परन्तु वह अपने को सम्भाल कर बोली, "यह क्या हो गया तुम्हें ?"

मैंने कहा, "कुछ नहीं राजबाला ! इस गाँव में आने का आधा आकर्षण समाप्त हो गया।

बुआ जी चली गई तो जैसे अन्धेरा कर गई इतने लोगों के मनों में। धीरे-धीरे यह अन्धकार नये बच्चों के प्रकाश से दूर होगा। बुआ जी के बिछोह की पीड़ा संसार की व्यापक पीड़ा में विलीन होगी और उनकी अमर स्मृति अपने प्रकाश से हमारे जीवन को आलोकित करती रहेगी, परन्तु इस समय मन तिलमिला उठा है। माथा फटा जा रहा है मेरा।"

राजबाला ने मेरे गर्म माथे पर अपनी नर्म हथेली रखकर धीरे-धीरे दबाया। मैं आँखें बन्द करके लेटा रहा थोड़ी देर।

दिल को समझाता रहा मस्तिष्क से तर्क दे-दे कर।

बाँकेबिहारी मेरी दशा देखकर राजबाला से बोला, "भाभी जी ! शर्मा जी का दिल बहुत कमज़ोर है। इन्हें मैं सम्भालता नहीं तो यह गिर जाते।

वह तो अच्छा हुआ कि एक क्षण पूर्व ही किसी ने इनके हाथ से अर्थी का डंडा सम्भाल लिया, वरना यह वहीं गिर जाते।"

"सचमुच गिर जाता राजबाला ! बाँकेबिहारी सच कह रहा है। आज मेरा दिल बहुत ही कमजोर साबित हुआ।" मैंने कहा।

राजबाला बोली, "आप बोलिए नहीं ज़रा भी।" और फिर उसने संकेत से बाँकेबिहारी को भी वहाँ से बाहर भेज दिया।

सब चले गये तो एकांत में राजबाला बोलीं, "इतना रंज करना अच्छी बात नहीं होती।"

राजबाला धीरे-धीरे मेरा माथा सहलाती रही और मैं चुपचाप बहुत देर तक लेटा रहा। बसन्ती बुआ जी का ध्यान बार-बार आकर मेरे मन को मथ डालता था। मैं उसे भुलाने का बहुत प्रयास कर रहा था, परन्तु मैं जितना ही उन्हें भुलाने का प्रयास करता था उनके जीवन की पुरानी स्मृतियाँ उतनी ही निखर कर मेरे सामने आती जाती थीं।

मैं राजबाला से बोला, "राजबाला ! आज बुआ जी भी छोड़ गईं हम लोगों को। एक दिन ऐसे ही अचानक पिता जी छोड़ गये थे। जो लोग कल तक चलते-फिरते और बातें करते नज़र आते थे, अब स्वप्न बन गये।

कितना प्यार करती थीं बुआ जी हमें ?"

राजबाला की आँखों में भी आँसू भर आये मेरी बात सुनकर। वह धीरे-धीरे बोली, "बसन्ती बुआ जी मेरी दूसरी माँ थीं। जब एक बार माजी बीमार हुई थीं तो मुझे बुआ जी ने ही पाला था। मुझे हर समय अपनी गोद में लिए फिरा करती थीं।

माजी से आकर कहा करती थीं, 'चमेली ! तेरी इस लाडली बेटी ने तो मेरा ऐसा पीछा पकड़ा है कि छोड़ती ही नहीं एक मिनट के लिए भी।'

माजी उनकी बात सुनकर कहती थीं, 'बसन्ती यह मेरी लाडली काहे की है, यह तो तेरी ही लाडली है। मेरे पास तो यह आकर भी

नहीं। फटकती । तू एक घड़ी को भी इसे छोड़कर चली जाती है तो यह रो-रो कर घर भर देती है ।'

एक बार जब मेरी शादी नहीं हुई थी तो बुआ जी मुझे अपनी ससुराल भी ले गई थीं ।

वहाँ बुआ जी के साथ-साथ मुझे फूफा जी का भी प्यार मिला था । बहुत अच्छे आदमी थे । एक दिन मुझे अपने स्कूल में भी ले गये थे ।

जितने दिन मैं वहाँ रही तो कभी फूफा जी घर में मेरे लिए कुछ-न-कुछ लिए बिना नहीं आते थे और घर में घुसते ही पहले यही पूछते थे, 'मेरी बिटिया राज कहाँ है ?'

मैं कूद कर उनकी गोदी में चढ़ जाती थी । फिर मुझे लेकर वह अपने बाग में घूमने के लिए जाते थे और मुझे पक्के अमरूद खिलाते थे।

वे बातें मुझे अब ऐसी लग रही हैं कि मानो अब हो रही हैं। सब बातें चलचित्र के समान आँखों के सामने से गुज़र रही हैं ।

: १६ :

दूसरे दिन मैं और बाँके बिहारी दिल्ली लौटे ।

मैंने बाँकेबिहारी से कहा, "बाँकेबिहारी ! देखा तुमने कुछ । यह एक नई दुनियाँ है । यहाँ की सब चीज़ें उनसे भिन्न हैं जो तुम नित्य देखते हो, परन्तु मूल में कोई अन्तर नहीं है ।

आदमी जैसे चरित्रों के तुम्हें शहरों में देखने को मिलते हैं वैसे ही गाँव में भी हैं । यहाँ भी सब 'बसंती बुआ जी, ही नहीं बसतीं । एक-से-एक ऐसी डायन भी हैं कि उनके चरित्र सुनकर तुम्हें घृणा होने लगे । परन्तु मैं ऐसे चरित्रों को लेकर साहित्य की रचना करना उचित नहीं समझता । किसी के प्रति घृणा उत्पन्न करने वाला साहित्य आनंद की सीमा से बाहर निकल जाता है और जो साहित्य आनंद की प्राप्ति नहीं करा सके, करुणा उत्पन्न न कर सके, वह साहित्य ही क्या ? किसी का यूँही किस्सा कहना अपना अभिप्राय नहीं है ।"

बाँकेबिहारी बोला, "तब तो आपका अभिप्राय यह हुआ कि आप केवल उन्हीं पात्रों को अपनी रचना में स्थान देते हैं जिनसे आपके अभिप्राय की पूर्ति हो। क्या इससे साहित्य के स्वाभाविक विकास को ठेस नहीं लगती ?"

मैंने कहा, "बिलकुल नहीं ! साहित्य की मूलाकार भावना अवश्य है, परन्तु क्योंकि इसका सम्बन्ध मानव-जीवन से है, इसलिए भावना का भी अंधे होकर पीछा नहीं किया जा सकता। भावनापूर्ण विचार की तराजू पर तुम्हें तोलना होगा, हर उस चीज़ को जो तुम कहना या लिखना चाहते हो।

प्रेम की कसौटी मैं तुम्हारे सम्मुख उपस्थित कर चुका। बुआ जी प्रेम की साकार प्रतिमा थीं। वह प्रेम किसी बाहरी सौंदर्य से उत्पन्न नहीं हुआ था। उसमें रूप का आकर्षण प्रधान नहीं था। परन्तु उसमें जीवन की कोमलतम भावना को छूने की स्वस्थ क्षमता थी। प्रेम का यही स्वस्थ रूप साहित्य का प्राण है। इसे मैं ईश्वरीय प्रेम से भी कहीं अधिक महत्वपूर्ण मानता हूँ।

ईश्वर के चक्कर में पड़कर मनुष्य भाग्यवादी बनकर अकर्मण्य हो जाता है। देश, समाज और घर, परिवार सब उसकी दृष्टि से ओझल हो जाते हैं। यह जीवन की कठोर परिस्थितियों से भाग खड़े होने की दिशा है। मानव-जीवन इतनी अपदार्थ वस्तु नहीं है कि उसे यूँही भुला दिया जाय।

ऐसा होता तो बसंती बुआ जी अपने बच्चों और पति की मृत्यु के पश्चात् माला लेकर गंगा किनारे पूजा-पाठ में रत हो जातीं परन्तु यह सब उन्होंने नहीं किया। उन्होंने मनोहर फूफा जी की खेती सँभाली और अपनी ससुराल की मिटती हुई आबरू को बचाया।

कितनी महान् प्रेरणा दी उन्होंने कर्त्तव्यपरायणता की दिशा को।

प्रेम के इस रूप का मूल्यांकन करने वाला साहित्य ही सबसे उच्च कोटि का साहित्य है।"

बाँकेबिहारी ने पूछा, "तब क्या मनोरंजन को आप साहित्य का अंग नहीं मानते ?"

मैं हँसकर बोला, "मानता क्यों नहीं बाँके बिहारी ! मनोरंज जीवन की एक बड़ी आवश्यकता है। मैंने उस दिन तुम्हें जीवन की आवश्यकताओं के विषय में बतलाया था। साहित्य मानव-जीवन की आवश्यकताओं पर आधारित है। जीवन की आवश्यकताएँ ही तो भावनाओं और विचारों को उद्वेलित करती हैं। उनका चिंतन और मनन करना साहित्य का विषय है।

जो साहित्य मानव-जीवन की इन आवश्यकताओं की जितनी भी गहराई में जा सकेगा, वह उतनी ही महान् कला होगी।

कुछ साहित्यकार जीवन की इन अवश्यकताओं में से एक या दो को पकड़कर उन्हें ही अपने साहित्य का मूलाधार मान बैठते हैं. परन्तु ऐसा करने से उनका साहित्य एकांगी हो जाता हैं। उसमें सम्पूर्ण जीवन का सही और संतुलित मूल्यांकन नहीं हो पाता।

मनोरंजन जीवन में बहुत बड़े महत्व की वस्तु है और उसका साहित्य में समावेश होना ही चाहिए। परन्तु केवल मनोरंजन तक सीमित रह जाने वाला साहित्य, साहित्य के उस धरातल को नहीं छू सकता जिसे अमर साहित्य की उपाधि दी जाती है।"

ये बातें करते हुए हम लोग रिक्शा-स्टेंड पर आ गये और एक किरायेः की रिक्शा करके उस पर सवार हो गये।

गाँव से बाहर निकलकर बाँके बिहारी ने एक बार फिर मुड़कर गाँव को देखा। वह बोला, "शर्मा जी ! आपकी बदौलत मैं यह गाँव देख सका। मेरी यह यात्रा मेरे जीवन में क्या परिवर्तन लायेगी, कह

नहीं सकता। परन्तु इतना तो निश्चय ही है कि इस यात्रा ने मेरे विचारों पर बहुत गहरा प्रभाव डाला है।

ऊपर की दिखावट का जैसा उपहास मैंने यहाँ आकर देखा वह सम्भवतः मैं जीवन भर कभी देख ही न पाता। गाँव की वास्तविक दशा का भी मुझे ज्ञान न होता। कभी गाँव को स्वर्ग और कभी नर्क ही मैं मानता रहता। यहाँ के रहन-सहन और व्यवहार का भी मुझे पता न चलता।"

मैं बाँके बिहारी की सरल बात सुनकर हँसता हुआ बोला, "बाँके बिहारी ! गाँव का पता तुम्हें अभी बहुत कम हुआ है। अपने इसी अनुभव के आधार पर कहीं तुम अब गाँव की रचना करने न बैठ जाना।

हमारे शहर के कुछ प्रौढ़ लेखक भी ऐसी ही भूलें करते हैं और जहाँ तक तुम सिनेमा की बातें करते हो उन बेचारों का तो देहातों के जीवन से कोई सम्बन्ध ही नहीं है। जितने भी चित्रों में देहातों का चित्रण किया जाता है वह बिलकुल ग़लत होता है। न गाँव का वातावरण, न गाँव के लोग बाग, न गाँव की सभ्यता, न गाँव के कारोबार कुछ भी तो सही चित्रित करने का उन्हें सलीका नहीं है। एक मज़ाक की तरह वे अपने चित्रों का निर्माण करते हैं। उनकी दृष्टि केवल चित्रों को 'हिट' बनाने की दिशा में होती है और 'हिट' पिक्चरें वे ही होती है जिनमें लफंगों की खिड़कियों पर भीड़ जमा हो जाती है।"

बाँकेविहारी बोला, "आप मेरे 'हिट' शब्द को अभी भूले नहीं शर्मा जी ! मैं तो समझ रहा था कि आपके मस्तिष्क से वह बात निकल गई होगी।"

मैं बोला, "वह बात, जो तुम जैसे नौ जवान के हृदय को प्रभावित कर सकी, क्या इस प्रकार मेरे मस्तिष्क से निकलने वाली है बाँकेबिहारी !

तुम्हारे सिनेमा की नग्नता पराकाष्ठा को पहुँच चुकी है। साहित्य उससे दूर ही रहे तो अच्छा है। कम-से-कम कुछ तो सचाई इसमें दिखलाई देती है। आदमी एकदम स्वप्न की दुनियाँ में ही विचरण न करने लगे और सेक्स की बीमारी का ही शिकार बनकर न रह जाये।

सिनेमा राष्ट्र को प्राण दे सकता है। साहित्य के उद्देश्य को लोगों की आँखों के सम्मुख सुन्दर ढंग से प्रस्तुत कर सकता है। परन्तु हो यह सब कुछ भी नहीं रहा। होता यही है कि निर्माता पिक्चर को 'हिट' बनाने की दिशा में ही सोचता और विचार करता है।

निर्माता के सम्मुख न साहित्य का कोई महत्त्व है और न कला का। वह पिक्चर को केवल इस दृष्टि से बना रहा है कि उसे पैसा कमाना है। जिस चित्र का भी निर्माण हो उसमें चार-पाँच डाँस, चार पाँच इश्किया गाने होने ही चाहिएँ। तभी तो पिक्चर 'हिट' बनेगी।

बड़े ही दुर्भाग्य की बात है कि हमारा निर्माता-वर्ग साहित्य से बहुत पिछड़ा हुआ है।"

मेरी बात सुनकर बाँकेबिहारी बोला, "यह बात आपकी मैं मानता हूँ शर्म्मा जी! आज जो चित्र आ रहे हैं सुरुचिपूर्ण नहीं हैं। उनमें साहित्य की मर्यादा भी नहीं है परन्तु आकर्षण अवश्य है उनमें, यह मानना ही होगा।"

मैं बोला, "आकर्षण सर्वदा अच्छी बातों की अपेक्षा बुरी बातों की ओर अधिक होता है। मनुष्य का मन बुराइयों की ओर जिस फुर्ती के साथ लपकता है उतनी गति के साथ अच्छी बातों की ओर नहीं बढ़ता।

यह आकर्षण अच्छा नहीं है बाँकेबिहारी! इसका प्रभाव दर्शकों पर भला होने वाला नहीं है। यह हमारे समाज को निर्माण की दिशा नहीं दे सकता, यह हमारे समाज को संयम प्रदान नहीं कर सकता, यह हमारे समाज को चारित्रिक बल नहीं दे सकता।

इस आकर्षण को लेकर लिखा गया साहित्य चन्द मनचले नौजवानों

की चुहलबाज़ी का सामान भले ही बन सके, यह राष्ट्र के सम्मुख कोई स्वस्थ विचार प्रस्तुत नहीं कर सकता।

यह आकर्षण आँखों का धोखा है, जीवन की शांति नहीं। दो घड़ी का खेल है केवल, जीवन के परम सुख की नींव नहीं रखता।"

बाँके बिहारी बोला, "सिनेमा के निर्माताओं ने अच्छे चित्र भी बनाये हैं शर्मा जी! अच्छे लेखकों की रचनाओं पर भी चित्र बने हैं।"

मैं हँस कर बोल, "कुछ बने अवश्य हैं और उन्हें अपनाया भी है जनता ने। इसका अर्थ यही हुआ कि जनता मूर्ख नहीं है। वह अच्छी चीज़ों को भी अपनाती है। भूल निर्माताओं की ही है कि वे अपने कार्य के लिए सही चीज़ों का चुनाव नहीं कर सकते।

मैं कलाकार हूँ बाँकेबिहारी! कला को देखकर मेरा हृदय गद्‌गद् हो उठता है। करुणा के स्थल आते हैं तो मैं रोने लगता हूँ और मुस्कराने का अवसर आता है तो मेरे होठ मुस्कराने लगते हैं।

लेकिन जब मैं तुम्हारे सिनेमा में कला का दम गुटते हुए देखता हूँ और उसकी छाती पर आवारा मश्टण्डों को चहलक़दमी करते देखता हूँ तो मेरा हृदय रोने लगता है।

तुम जिस सिनेमा को देखने का मुझसे आग्रह कर रहे हो, उसे देख कर मैं क्यों अपनी नींद हराम करूँ?

अच्छे चित्रों को मैं देखता हूँ और देखता हूँ कि आज इतने दिनों में देश का यह व्यवसाय कितना आगे बढ़ा? मैं देखता हूँ कि संगीत के क्षेत्र में इसने क्या प्रगति की, नृत्य के क्षेत्र में इसने क्या प्रगति की, कथा के विषय में इसने क्या प्रगति की, नाटकीयता में इसने क्या प्रगति की। मानव जीवन के यह कितना निकट आ सका। मानव की भावनाओं और विचारों को यह जनता के हृदय में कैसे उतार सका।"

हम लोग अब मोदीनगर आ चुके थे। वहाँ से बस में बैठ कर दिल्ली आये।

मुझे यह देखकर हार्दिक प्रसन्नता हुई कि बाँकेबिहारी को जिस उद्देश्य से मैं अपने साथ ले गया था, उसमें मुझे सफलता मिली। बुआ जी की जीवन-कथा ने एक नवयुवक लेखक को लेखन की एक स्वस्थ दिशा प्रदान की।

बाँकेबिहारी बोला, "शर्मा जी ! मेरी यह गाँव की यात्रा मेरे जीवन के एक बहुत ही महत्वपूर्ण मोड़ के रूप में समझिये आप। आपके अनेकों तर्क और उक्तियाँ मेरे मस्तिष्क पर जो प्रभाव नहीं डाल पाई थीं वह प्रभाव उससे भी कहीं ज्वलंत रूप में बुआ जी की जीवनी सुनकर मुझ पर पड़ा।

अब मैं आपकी इस बात से सहमत हूँ कि सेक्स प्रेम की मूल आकर्षण शक्ति नहीं है। कर्त्तव्य और त्याग ही सही मायने में प्रेम की कसौटियाँ हैं।

मैं आपको विश्वास दिलाता हूँ कि भविष्य में मैं जो भी रचना लिखने का प्रयास करूँगा उसमें कर्त्तव्य और त्याग की निष्ठा होगी।"

मैं प्रसन्नता पूर्वक बोला, "तुम्हारे जीवन के इस परिवर्तन को देखकर मुझे हार्दिक संतोष हुआ बाँकेबिहारी और उससे भी अधिक संतोष तब होगा जब तुम अपनी पहली रचना बसंती बुआ जी को समर्पित करोगे, क्योंकि वास्तव में वही तुम्हें दिशा देने वाली हैं। मैं तो केवल साधन मात्र रहा हूँ इस शुभ कार्य में।"